नैपाल : अतीत और वर्तमान

लेखक

श्री शंकरसहाय सक्सेना

डायरेक्टर राजस्थान कालेज जयपुर भूतपूर्व प्रिंसिपल वनस्थली
विद्यापीठ तथा प्रिंसिपल महाराणा भूपाल कालेज उदयपुर,
एवं भूतपूर्व शिक्षा संचालक (राजस्थान)

प्रकाशक

नवयुग ग्रन्थ कुटीर

बीकानेर

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

प्रथम संस्करण १९६५
मूल्य १० रुपए

मुद्रक
एजूकेशनल प्रेस
बीकानेर

भूमिका

नपाल भारतवासिया के लिए अत्यन्त प्राचीन काल स आकर्षण का केन्द्र रहा है । उसका कारण यह है कि यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से नपाल एक स्वतन्त्र देश था परन्तु नपालियो मे भारतीय रुधिर है, वहा का धर्म, संस्कृति, रीति रिवाज, कला-कौशल मान्यताए भारतीय है । हजारो वर्षो से नपाल और भारत के अटूट संबन्ध रहे है। ब्रिटिश-काल म जब भारत पराधीनता की श्रृंखला म जकडा हुआ था तो भारतीय नपाल को स्वतन्त्र देखकर प्रसन्न होते थे और आत्म-संतोष करते थे । राजवंश के ही नहीं नपाली नागरिको के विवाह सम्बन्ध भी भारत स होते ह । कहने का तात्पर्य यह है कि भारत और नपाल के सम्बन्ध इतने दृढ़ और समीप के है कि नपाली जब भारत मे आता है तो वह यह नही मानता कि वह विदेश म आया है । भौगोलिक दृष्टि से तो नपाल भारत भूमि का विस्तार मात्र है । पर्वतराज हिमालय के दक्षिण मे होने के कारण नपाल उत्तर भारत के मैदानो स मिला है । यदि नपाल पर शत्रु देश चीन का अधिकार हो जाय अथवा नपाल उसके प्रभाव मे चला जाय तो वह भारत के आंगन मे ही आ जायगा । वास्तव मे बात तो यह है कि भारत की सुरक्षा के लिए भी यह नितान्त आवश्यक है कि नपाल और भारत एक सूत्र म बँधे रहे । नपाल के हितो की दृष्टि से तो यह और भी आवश्यक है कि वह भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध रक्खे नहीं तो उत्तर से उसके अस्तित्व को ही भयंकर खतरा है ।

भारत के स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त हमारी सरकार न इस तथ्य को भुला दिया । नपाल और भारत की उत्तरी रक्षा पंक्ति तिब्बत का जब साम्राज्यवादी और विस्तारवादी चीन ने पदाक्रान्त किया तो हमने विरोध तक न किया । हमने जैसा लज्जाजनक व्यवहार तिब्बत के साथ किया वह सदैव के लिए भारत के माथे पर कलंक के टीके के समान चमकता रहेगा । विवश होकर नपाल को भी तिब्बत पर चीन की प्रभुता को मान्यता देनी पड़ी । नपाल के नेता भारत सरकार की निर्बलता को समझ गए । तभी से उनका भारत

पर से भरोसा उठ गया और वे भारत के शत्रु चीन की ओर झुकने लगे।

दुर्भाग्यवश यदि कभी चीन तिब्बत की भांति नेपाल, सिक्किम और भूटान का उदरस्थ कर सका और लद्दाख तथा नेफा मे प्रवेश पा गया तो समस्त उत्तर भारत चीन से पदाक्रान्त होने से नही बच सकेगा। नेपाल की सुरक्षा भी भारत से बधी हुई है। अस्तु भारतीयों और नेपालियो को यह तथ्य न भूल जाना चाहिए कि नेपाल और भारत का भविष्य प्रकृति द्वारा एक ग्रंथि मे बाध दिया गया है। यदि मूर्खतावश हमने इस ग्रन्थि को खोल दिया और नेपाल भारत से अलग हो गया तो उसका अस्तित्व तो समाप्त हो ही जायेगा चीन द्वारा पदाक्रान्त नेपाल भारत के लिए भी एक महान् खतरा बन जायेगा। दोनो देशो को इस तथ्य की पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखकर ही अपने सम्बन्धों को निर्धारित करना चाहिए।

अतएव दोनो देश एक दूसरे को जानें, यह नितान्त आवश्यक है। नेपाल नैसर्गिक सौदर्य का अद्वितीय भूखड है वह वीर गोरखों का देश है जिनकी वीरता और शौर्य ने दो महायुद्धो मे ससार के महान् सेनापतियो को चकित कर दिया था जिन्हें आज भी ब्रिटेन अपनी सेना मे भर्ती करने के लिए लालायित रहता है। अस्तु अग्रजी में नैपाल के सम्बन्ध मे अनेक सुन्दर पुस्तकें लिखी गई और प्रकाशित हुई। परन्तु हिन्दी मे नेपाल के सम्बन्ध मे साहित्य लगभग नही के बराबर है। लेखक ने इस पुस्तक के द्वारा इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया है। हिन्दी भाषा भाषियो मे यदि इस पुस्तक द्वारा नेपाल के सम्बन्ध मे रुचि उत्पन्न हुई और वे नेपाल के महत्त्व को जान सके तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा। पुस्तक लिखने मे यह ध्यान रक्खा गया है कि नैपाल के भूगोल इतिहास राजनीति और आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी दी जाय।

राजस्थान कॉलेज, जयपुर — शंकर सहाय सक्सेना

विषय-सूची

नेपाल : अतीत और वर्तमान

नैपाल देश

नपाल भारत के उत्तर मे तथा तिब्बत (चीन) के दक्षिण मे पवत राज हिमालय की पवतमालाओं से घिरा हुआ देश है। इसके उत्तर मे तिब्बत पूव मे सिक्किम और पश्चिमी बगाल दक्षिण मे उत्तर प्रदेश और पश्चिम में उत्तर प्रदेश का कुमायू डिवीजन है। यह देश मोटे रूप मे २६ और ३० डिगरी अक्षाश रेखाओं तथा ८० और ८८ डिगरी पूर्वी देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है। इसकी पश्चिम से पूव तक लम्बाई ५२० मील और औसत चौड़ाई ९० से १०० मील है। अधिकतम चौड़ाई १४० मील है। नपाल का क्षेत्रफल ५५ हजार वगमील और जनसंख्या ८५ लाख से अधिक है।

प्राकृतिक दृष्टि से नपाल को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है।

तराई—नपाल का दक्षिणी भाग तराई का प्रदेश है तराई की पट्टी पूव से पश्चिम तक फली है। यह दस से तीस मील तक चौड़ी है। तराई म जल बहुत अधिक होने के कारण और भूमि नीची होने के कारण नमी बहुत अधिक है। इस प्रदेश की ऊचाई केवल एक हजार फीट है भूमि नरम और समतल है वर्षा ९० इच होती है। इस कारण तराई का प्रदेश अत्यन्त घने और सघन वनो से आच्छादित है। मलेरिया का अवश तराई मे भयकर प्रकोप है। सारा प्रदेश अस्वास्थ्यकर है। परन्तु तराई के सघन वन ससार म शेर आदि के शिकार के लिए अद्वितीय स्थान हैं। ससार का प्रत्येक महत्वपूण शिकारी नपाल की तराई म शिकार खेलने का स्वप्न देखता है। जिस शिकारी को नपाल की तराई के सघन वनों में शिकार खेलने का अवसर मिलता है वह उस सहोभाग्य मानता है। तराई में कहीं कहीं वन को काट कर उपजाऊ मदान तयार किए गये हैं जहां खेती होती है। यहा की भूमि बहुत उवरा है। यहां की मुख्य पदावार चावल गन्ना जूट तथा तम्बाकू है जो मुख्यत भारत को निर्यात की जाती हैं। तराई नपाल की दक्षिणी भूमि की पट्टी को कहते हैं जिसका क्षेत्रफल ८ हजार वग मील है। इसके उत्तर म भाभर का प्रदेश है जिसकी ऊचाई ४ हजार फीट है। इसका क्षेत्रफल ६ हजार वग मील है। यह घने जगलों से भरा है यहां से मूल्यवान लकड़ी मिलती है। जहां जगल साफ किये गये हैं वहां खेती होती है। गन्ना तिलहन तथा चावल यहां की मुख्य पदावार हैं। तिलहन का निर्यात होता है।

मध्यप्रदेश—यह प्रदेश तराई तथा भीतरी हिमालय की भाभरा

चुम्बी पर्वत श्रेणियों के बीच घाटियों और पहाड़ियों का प्रदेश है। इसकी ऊंचाई सर्वत्र एक समान नहीं है। इस प्रदेश की ऊंचाई चार हजार फीट से १५००० फीट तक है। यह प्रदेश नेपाल का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। यहां की उवरा घाटियों मे नेपाल का सर्वोत्तम कृषि प्रदेश है और विस्तृत तथा घास से भरे हुए घने चरागाह हैं जहां अगणित पशु चराए जाते हैं। यहां शीतोष्ण और आल्पस पर्वतीय प्रदेश की जलवायु उपलब्ध होने से उसी प्रकार की पैदावार होती है। यहां की औसत वर्षा ४० इंच है।

भीतरी हिमालय—यह प्रदेश नेपाल के उत्तर मे उत्तरी सीमा पर एक ऊंची दीवार के समान खड़ा है। यह सारा प्रदेश गगनचुंबी पर्वत श्रेणियों से भरा है और इसी प्रदेश मे संसार के कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण ऊंचे पर्वत शिखर विद्यमान हैं। नेपाल का यह प्रदेश सत्रह हजार फीट से २९ हजार फीट तक ऊंचा है और वर्ष भर हिम से आच्छादित रहता है। एक प्रकार से यह ऊंचा प्रदेश नेपाल का उत्तर मे दृढ़ प्रहरी है। अभी तक नेपाल और भारत हिमालय की गगनचुंबी प्राचीर के कारण अपनी उत्तरी सीमा को सुरक्षित समझते थे परन्तु पिछले वर्षों में चीन ने दक्षिण में जिस प्रकार अपना विस्तार करना आरम्भ किया है उससे वह सुरक्षा समाप्त होगई है। आज नेपाल और भारत को चीन के विरुद्ध अपनी उत्तरी सीमा की रक्षा के लिये सजग और सतर्क रहना पड़ता है।

पर्वतमालाएं—नेपाल की उत्तरी सीमा पर गगनचुंबी हिम आच्छादित पर्वतमालाएं संसार में सबसे ऊंची हैं। पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई इन पर्वतमालाओं मे संसार के अनेक प्रसिद्ध हिमाच्छादित शिखर हैं। सागरमाथा (माउन्ट एवरेस्ट) मकालू धौलागिर अन्नपूर्णा किंचिनजंगा तथा अन्य पचास से अधिक शिखर इन्हीं पर्वतमालाओं में स्थित हैं। हिमाच्छादित पर्वतीय प्रदेशों का ऐसा नैसर्गिक सौन्दर्य संसार में कहीं भी देखने को नहीं मिलता। वह अभूतपूर्व दृश्य देखने और उस पर्वतीय प्रदेश के सौन्दर्य को निरखने के लिये ही असंख्य पर्यटक पृथ्वी के कोने कोने से नेपाल आते हैं। सच तो यह है कि पृथ्वी का अन्य कोई देश नेपाल के इस नैसर्गिक पर्वतीय सौन्दर्य की समता नहीं कर सकता।

नेपाल के मुख्य शिखर नीचे लिखे हैं–

(१) सागर माथा (माउन्ट ऐवरेस्ट)--२९१४१ फीट (२) कंचनजंगा २८१४६ फीट (३) मकालू– २७७९० फीट (४) ल्होत्से– २७१९० फीट (५) धौलागिर– २६८१० फीट (६) चोयु– २६५६७ फीट,(७) मनसुलु– २६,६५८ फीट (८) अन्नपूर्णा– २६ ३९१ फीट (९) गासन थान– २६ २९१ फीट (१०) हिमाल चूली– २५,८०१ फीट (११) गौरीशंकर– २३ ४४० फीट। इनके अतिरिक्त नेपाल मे ३८ और ऐसी चोटियां हैं जिन पर न तो अभी तक आरोहण हुआ है और न उनको अभी तक कोई नाम ही दिया गया है। यह शिखर २२ हजार फीट से अधिक ऊंचे हैं।

नदियां—नेपाल में ऊंची पर्वतमालाओं के अतिरिक्त मध्य में बहुत सी नदी घाटियां हैं। यह घाटियां क्षेत्रफल तथा ऊंचाई में एक समान

नहीं है इनके क्षेत्रफल और ऊंचाई में बहुत विभिन्नता है।

काठमांडू घाटी जो नेपाल की घाटी के नाम से भी प्रसिद्ध है सबसे बड़ी घाटी है। इस घाटी का क्षेत्रफल २४२ वर्गमील है। यह समुद्रतल से ४५०० फीट ऊंची है इसी घाटी में नेपाल के तीन सबसे बड़े नगर स्थित हैं। काठमांडू (राजधानी) पाटन (ललितपुर) और भक्तपुर (भट गांव) इसी घाटी में हैं। काठमांडू घाटी में तीन नदियां बहती हैं। बागमती अत्यन्त पवित्र नदी है जो घाटी के जल को लेकर गंगा में मिलती है। इसके अतिरिक्त इस घाटी में विष्णुमती और हनुमती नदियां और बहती हैं। यह दोनों नदियां बागमती की सहायक हैं। पूर्व में भोजपुर धनकुटे घाटी है जिसमें से सप्तकोसी नदी बहती हुई भारत में कोसी के नाम से बहती है। मध्य नेपाल में पाल्पा की घाटी है जिसमें कृष्णाकाली गंडकी नदी बहती है जो दक्षिण में गंडक के नाम से (उत्तर प्रदेश) भारत में बहती है। नेपाल के पश्चिम में राप्ती और करनाली नदियां बहती हैं। करनाली जब भारतमें घुसती है तो उसका नाम घाघरा हो जाता है। आगे चलकर यह गंगा से मिल जाती है।

पाल्पा और राप्ती की घाटियों में मछलियां बहुतायत से मिलती हैं। इन घाटियों में पर्यटक मछली का शिकार, मौका वाहन तथा पशुओं का शिकार बहुत करते हैं। इन घाटियों में कतिपय संसार प्रसिद्ध नैस र्गिक सौंदर्य स्थल हैं और यहां संसार प्रसिद्ध शिकारी तथा फोटोग्राफर आया करते हैं। इस पहाड़ी देश में इन नदियों में बहुत से सुन्दर जल प्रपात तथा झीलें हैं जिनका स्वच्छ जल और नैसर्गिक सौंदर्य अनोखा है। इस देश के नैसर्गिक सौंदर्य स्थलों की तुलना में संसार के बहुत कम सौंदर्य स्थल रखे जा सकते हैं। नेपाल की झीलें प्राकृतिक सौंदर्य की अद्वितीय निधि हैं और संसार के पर्यटक उनका आनन्द लेने के लिए आते हैं। उनमें मुख्य झीलें आगे लिखी हैं, फेवा ताल, रिपरा ताल, महो ताल, और रूप ताल इत्यादि। इन नैसर्गिक स्थलों का वर्णन लेखनी की सामर्थ्य के बाहर है यह तो अनुभव हो किया जा सकता है।

पहाड़ों में खेती के लिए भूमि बहुत कम होने के कारण तथा अन्य कठिनाइयों के कारण यहां की जनसंख्या का निर्वाह नहीं हो सकता। यही कारण है लाखों की संख्या में नेपाली भारत में अपना जीवन निर्वाह करने के लिए आते हैं। पहाड़ों में जमींदारी तो नहीं के बराबर है फिर भी यहां के जिमुवाल (जमीनवाल) तराई के जमीं दारों की तरह ही किसानों का शोषण करके धनी बन जाते हैं। इन जिमुवालों का स्थानीय राज्य कर्मचारियों पर विशेष प्रभाव होता है। इस कारण न्यायालयों से किसानों का उनके विरुद्ध न्याय प्राप्त नहीं होता।

भीतरी मध्यदेश में कुछ कृषि योग्य भूमि अवश्य है परन्तु वह खास मध्यदेश की भांति उपजाऊ नहीं है। भीतरी मध्यदेश में मक्का, बाजरा, तथा चरस विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं। यहां बेल की भी खेती होती है।

पश्चिमी भीतरी मध्यदेश में जिमुवाल प्रायः बड़ी बड़ी खोरें ही करवाते हैं। खोर की भूमि जिमुवाल की होती है परन्तु आसामियों से

बिना मजदूरी दिए अथवा बहुत कम मजदूरी में जुताई बुवाई जाती है क्योंकि वे उसकी जमीन पर बसे हुए हैं। दूसरे प्रकार की खेती को "सल" कहते हैं। "सल जिमुवाल की भूमि होती है उसमें भूमि को आसामी को आधा बटाई पर दी जाती है। फसल की आधी पैदावार किसान जिमुवाल को दे देता है। तीसरे प्रकार की जोत बेगारी' होती है। बेगारी जोत जिमुवाल की होती है परन्तु आसामी को बेगार में उस पर काम करना पड़ता है। जिमुवाल बेगारी में घी दूध लकड़ी, अनाज फल फूल भी किसानों से जबरदस्ती लेता था।

खास तराई में खेती योग्य बहुत अधिक भूमि है। उसमें जमींदार बड़ी बड़ी सीरें करवाते हैं सरकार ने हरी बेगारी बंद करदी है उसे गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है परन्तु पुरानी परम्परा एक साथ समाप्त नहीं होती। जमींदार किसानों को डरा धमकाकर बेगार ले लेते हैं वे आसामी को गांव से निकाल देने की धमकी देते हैं। गांव वालों को पहले मिलकर जमींदार की सीर को जोतना बोना पड़ता है और फिर वे अपनी खेती करते हैं। गांव के पोखरो तालाबों बागों पर जमींदार का सर्वाधिकार होता है। किसान उनका उपयोग नहीं कर पाते। पोखरों तालाबों और नदियों की मछलियों पर भी जमींदार का ही अधिकार होता है।

गांवों में अधिकांश भूमि जमींदार की सीर होती है। शेष भूमि किसानों (आसामियों) को आध बटाई पर अथवा मालगुजारी पर उठा दी जाती है। सीर की देखभाल करने के लिए जमींदार गांव में सीर के मकान रखते हैं सीर के मकान में जमींदार का कारिन्दा तथा तीन चार सीरदार रहते हैं जो हलवाहों की सहायता से जमींदारी की सीर करवाते हैं। कारिन्दे और सीरदार किसानों का खूब शोषण करते हैं और उन पर अत्याचार करते हैं। कारिन्दे जिन्हें मालगुजारी पर भूमि जोतने के लिए देते हैं। उनसे घूस लेते हैं क्रान्ति के समय सीर के मकानों को किसानों ने गिरा दिया था।

पश्चिमीय तराई की भूमि व्यवस्था पूर्वी तराई की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है। पश्चिमी तराई के किसानों के अधिकार में जो भूमि होती है उसे 'तिरजा' या नम्बरी कहते हैं। तिरजा की मालगुजारी जमींदार अथवा सरकार को दी जा सकती है। तिरजा के अतिरिक्त एक 'क' काम की भूमि होती है। क काम की जमीन वस्तुतः जमींदार की ओर से किसान को मिली हुई होती है। तीसरे प्रकार की जोत 'उखड़ा भूमि' कहलाती है। उखड़ा भूमि उस भूमि को कहते हैं जो जमींदार अथवा आसामी की ओर से किसी तीसरे व्यक्ति को आध बटाई या मालगुजारी पर साल दो साल के लिए उठा दी जाती है। उखड़ा भूमि पर लगान बहुत ऊंचा लिया जाता है और 'बकपोत' लगान से अधिक धन भी लिया जाता है।

पूर्वी नेपाल तराई में भूमि व्यवस्था दूसरी तरह की है। यहां ऐसे भी जमींदार हैं जो दस बीस बीघा के जमींदार हैं परन्तु वे हजारों बीघों के जोतदार होते हैं। पूर्वीय तराई में सीर को जिरायत और सीर के मकान को कामत कहते हैं। यहां खेत को आध बटाई पर तथा

लगान पर जोतने का आम रिवाज है।

नेपाल में भूमि—नेपाल की कुल भूमि का क्षेत्रफल ३ ४७ ११,६८० एकड़ है जो कि मोटे रूप में नीचे लिखे अनुसार विभाजित किया जा सकता है।

वनों से आच्छादित भूमि	
सदैव हिम से ढकी रहनेवाली भूमि	३१ ३%
अल्पादन (ऊँच पर्वतीय) चरागाह	१५ २%
नदियो, गांवों तथा नगरों की आबादी से घिरी भूमि	७ १%
मोतोड़ बंजर भूमि (वेस्ट लैंड) जो खेती के योग्य बनाई जा सकती है	१२ ५%
भूमि जिस पर खेती होती है	१६ २%
	१७ ७%
	१००%

मुख्य फसलें—

फसलें	क्षेत्रफल हजार एकड़ों में	अनुमानित उत्पादन हजार मनों में
धान (चावल)	६५८४	१८७६०
मक्का ज्वार, बाजरा	२९२०	२९२००
गेहूँ	७६८	७६८०
तिलहन	४०८	२०४०
आलू	५७६	८६४,०००
तम्बाकू	२८८	३४५६
पटसन (जूट)	७७	१००१
अन्य	११०	१०००

तराई और भाभर प्रदेश—देश का सबसे गरम प्रदेश है। वास्तव में यह गंगा के मैदान का ही भाग है। इसमें मैदान और जंगल हैं। यहाँ उष्ण कटिबन्ध की पैदावार होती है। यह अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश है और नेपाल का खलिहान कहलाता है। चावल, गेहूँ मक्का तिलहन जूट तम्बाकू यहाँ खूब पैदा होते हैं तथा वन सम्पत्ति तथा लकड़ी भी बहुत होती है। इसके अतिरिक्त आम केला लीची और अमरूद खूब पैदा होते हैं और फलों की पैदावार को बढ़ाने की बहुत अधिक सम्भावनाएं हैं।

मध्यप्रदेश में चावल गेहूँ और मक्का की खूब पैदावार होती है तथा नींबू नारंगी और शीतोष्ण कटिबन्ध के फल उत्पन्न होते हैं।

नेपाल में फलों की पैदावार बढ़ाए जा सकने की बहुत अधिक सम्भावनाएं हैं। सेब नासपाती नींबू नारंगी बादाम तथा पिस्ते की पैदावार बहुत बढ़ाई जा सकती है।

मध्यप्रदेश में दूध का धंधा बहुत उन्नत हो सकता है। पहाड़ी प्रदेश में खेती की सम्भावनाएं कम हैं परन्तु पशुपालन होता है तथा दूध का धंधा विकसित किया जा सकता है।

भूमि व्यवस्था—नेपाल में भूमि का स्वामित्व तीन श्रेणियों में बटा है (1) रैकर (२) बिरता (३) गुठी। रैकर—वह भूमि है जो राज्य ने अपने पास रखी है जिससे उसे मालगुजारी प्राप्त होती है।

उसका क्षेत्रफल कितना है यह ज्ञात नहीं है।

बिरता—यह भूमि है जिसे राज्य ने व्यक्तियों को उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में दे दिया है। वे एक प्रकार की जागीरें हैं। बिरता भूमि कितनी है यह ज्ञात नहीं है परन्तु यह अनुमान किया जाता है कि बिरता भूमि सबसे अधिक है।

गुठी—यह भूमि है जो धार्मिक संस्थाओं तथा धार्मिक व्यक्तियों को दातव्य के रूप में दी गई है उस पर कोई कर नहीं लगाया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि दश से दस लाख रोपानी भूमि इन धार्मिक संस्थाओं को गुठी के रूप में दी हुई है।

नेपाल में नीचे लिखी श्रेणी के किसान होते हैं।

(१) स्वामी कृषक— जो अपनी भूमि पर खेती करते हैं।

(२) साझीदार किसान— जो अन्य किसी की भूमि पर खेती करते हैं और उनको पैदावार का एक निश्चित हिस्सा देते हैं।

(३) आसामी किसान— जो भूमि के स्वामी से लगान पर भूमि लेकर खेती करते हैं।

(४) बिरता भूमि का आसामी किसान— बिरता भूमि जिसे राज्य के द्वारा खेती के लिए मिली है वह उसे आसामी को उठा देता है और उससे लगान वसूल करता है।

(५) एक वह किसान होता है जो अनुपस्थित भूमि के स्वामी की भूमि पर खेती करता है और उसे लगान देता है।

नेपाल की भूमि व्यवस्था भारत की रयतवारी प्रथा के अनुरूप ही है। तराई प्रदेश में मालगुजारी जमींदारों और पटवारियों के द्वारा वसूल की जाती है और पहाड़ी प्रदेश में जिम्मेवाल और तालुकदारों के द्वारा वसूल की जाती है। तराई में जमींदार को उसके द्वारा वसूल की हुई मालगुजारी पर ५ प्रतिशत और पटवारी को २½% कमीशन मिलता है। पहाड़ी प्रदेश में जिम्मेवाल और तालुकदारों दोनों को ही ५ प्रतिशत कमीशन मिलता है। काठमाडू घाटी में किसान सीधे खजाने में मालगुजारी जमा कराते हैं। वहाँ कोई बीचवाला नहीं है। तराई के जमींदार भारत के जमींदारों की भांति नहीं हैं। वे सरकार की ओर से मालगुजारी वसूल करते हैं। अपनी खेती के लिए सरकार उन्हें अलग से भूमि देती है जिसे पश्चिमी तराई में 'सीर' कहते हैं और पूर्वीय तराई में 'जिरायत' कहते हैं। वे उस भूमि को बेच भी सकते हैं।

सिंचाई—नेपाल में अधिकतर खेती वर्षा पर निर्भर करती है। केवल १२८००० एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है।

खेती की पैदावार का निर्यात—नेपाल चावल आलू तिलहन, जूट, गन्ना तम्बाकू का मुख्यतः निर्यात करता है। यदि देखा जावे तो नेपाल का मुख्य निर्यात खेती की पैदावार तथा वनों की लकड़ी तथा अन्य वन सम्पत्ति है।

किसानों की स्थिति

नेपाल के प्रथम राणा प्रधान मंत्री जंगबहादुर ने तराई की भूमि को खेती करने वालों को न देकर बड़े बड़े चौधरियों (जमींदारों) तथा अपने चाटुकार दरबारियों को दी। यही चौधरी और चाटुकार दरबारी

वहाँ किसानों को भूमि से उठा कर उनका अनवरत शोषण करते रहे। फिर भी क्रमश तराई म किसान खेती करने के लिए बसते गए।

महाराजा चन्द्र शमशेर राणा ने अपने शासन काल मे राज्य की आमदनी बढ़ाने के लिए तराई के प्रदेश मे नापी (पमाइश) करवाई। नापी मे भी बहुत धांधली और भ्रष्टाचार हुआ। जिसने जितनी अधिक रिश्वत दी उसको उतनी ही अधिक भूमि मिल गई। लाखों की सख्या में खेत वाले किसानों की भूमि को महाजनो से घूस लकर सीर के रूप मे लिख दी और किसान भूमि रहित कर दिए गए।

इसके पश्चात तराई मे नापी की प्रथा ही चल पड़ी। राणा सरकार नापी करने के लिए कुछ वर्षों के उपरान्त अपने कर्मचारी तराई में भेजती थी। नापी के समय फिर वही धांधली और भ्रष्टाचार की क्रिया दोहराई जाती थी। घूस दकर महाजन किसान की भूमि अपने नाम करवा लते थे। घूस लकर राज्य कर्मचारी गांव की मालगुजारी घटा देते न देने पर बढ़ा दते थे। नापी के द्वारा किसान का ऐसा भयकर शोषण होता था कि आज भी नापी के नाम से किसान भयभीत हो जाता है।

तराई का प्रदेश ही नपाल का कृषि प्रदश है। वहाँ जल की सुविधा है। भूमि उवर परन्तु जलवायु अच्छा नहीं है। नपाल का यही कृषि प्रदेश है।

नपाल के पहाड़ी लोग पत्थरो से लड़कर खेती करते हैं। नपाल का पहाड़ी प्रदश का किसान जैसा विकट परिश्रम करता है उसकी तुलना ससार का कोई किसान नहीं कर सकता है। वह पत्थरों से लड़कर खेती करता है। पानी का वहां नितान्त अभाव है। सिंचाई के कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं। वह दूर-दूर से घड़ों मे पानी भर कर लाता है और उस जल से फसल को सींचता है। उसके परिश्रम की समता कोई अन्य दश का किसान नहीं कर सकता।

जलवायु

तराई प्रदश को छोड़कर कि जहाँ उष्ण कटिबधीय जलवायु है नपाल के भिन्न भिन्न प्रदशों म जलवायु भिन्न रहता है। गर्मियो मे तराई म खूब गर्मी रहती है। तापमान ९० डिग्री से ११० डिग्री तक ऊचा चढ़ जाता है। उसी समय पहाड़ियों क क्षेत्र म तथा घाटियों म बसत ऋतु रहती है और पवतीय प्रदेश मे शीतकाल होता है।

वर्षा ऋतु—जून क अतसे १५ सितम्बर तक नपाल म दक्षिण पश्चिमी मानसून से वर्षा होती है। यहां अधिकतर वर्षा गर्मियों म ही होती है। अन्य मौसमों मे वर्षा बहुत कम होती है।

पूर्वीय भाग में वर्षा का औसत १०० इच ह परन्तु पश्चिम म वर्षा का औसत केवल ४० इच है। काठमांडू की घाटी म ५७ इच वर्षा का औसत है। तराई प्रदश अर्थात दक्षिणी सीमा प्रदश म वर्षा ७५ इच से ९० इंच तक होती है।

वर्षा ऋतु में तापमान विभिन्न भागों मे बहुत भिन्न रहता है। नपाल में उस समय उष्ण कटिबध और आल्पस जसे तापमान विभिन्न भागों में दखने को मिलते हैं।

प्रदेश	औसत तापमान फरनहीट
तराई का प्रदेश	७५ से ११० तक
पहाड़ियों का प्रदेश	५० से ७० तक
काठमांडू घाटी	६५ से ८० तक
भीतरी हिमालय	३२ से ५५ तक

शरद ऋतु—वर्षा के उपरान्त नवम्बर तक शरद का मौसम होता है। कभी कभी थोड़ी वर्षा हो जाती है। परन्तु उससे तापमान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। नवम्बर में पहाड़ों पर बर्फ पड़ने लगती है। दृश्य अत्यन्त मनमोहक और सुहावना हो जाता है। उस समय तापमान नीचे लिखे अनुसार रहता है।

प्रदेश	औसत तापमान फरनहीट
तराई प्रदेश	६० से ८०
पहाड़ियों का प्रदेश	४० से ५०
काठमांडू की घाटी	५० से ६०

शीतकाल—दिसम्बर से फरवरी तक शीतकाल होता है। नेपाल की घाटी के चारों ओर जो नीची पर्वतश्रेणियों की शाखायें हैं उन पर बर्फ जम जाता है और उन पर सूर्य की किरणें पड़ कर घाटी के सौंदर्य को बहुत बढ़ा देती हैं।

तराई प्रदेश में तापमान का औसत ६० से ७० फरनहीट, पहाड़ियों के क्षेत्र में २४ से ४० तक और काठमांडू की घाटी में ३२° से ५५ तक रहता है।

बसंत ऋतु मार्च से मई तक होती है। यह नेपाल की सबसे सुहावनी ऋतु है। वनस्पति से समस्त प्रदेश लहलहाता हुआ एक विशाल उद्यान का रूप धारण कर लेता है और हिमालय पर्वत पर श्वेत बर्फ होती है। तराई प्रदेश का तापमान ६० से ९० फॉरनहीट पहाड़ियों के प्रदेश का ४० से ६० तक और काठमांडू घाटी का ५० से ७० तक रहता है।

नगर और जनसंख्या

नेपाल छोटे गांवों का देश है। देश में कुल मिलाकर २८७८० नगर कस्बे और गांव हैं परन्तु इनमें से ८५ प्रतिशत की आबादी पांच सौ व्यक्तियों से कम है। देश भर में केवल दस कस्बे या नगर ऐसे हैं कि जिनकी जनसंख्या पांच हजार से अधिक है। देश की तीन चौथाई जनसंख्या एक हजार की आबादी से कम के गांवों में रहती है। ऊपर लिखे दस कस्बों और नगरों में देश की कुल जनसंख्या का केवल ३ प्रतिशत। निवास करती है उनमें से पांच कस्बे और नगर काठमांडू घाटी में हैं। चार कस्बे पूर्वी तराई में और एक सुदूर पश्चिमी तराई में स्थित है। नीचे उन दस कस्बों और नगरों की जनसंख्या दी जाती है।

काठमांडू– १०६५७९ ललितपुर – ४२,१८३ भक्तपुर – ३२,३२० नेपालगंज १०,८१३ वीरगंज – १० २६ विमी – ८६५७, विराट नगर ८०६० धार्तीपूर – ७०३८ जनकपुर – ७०२७ राजपरतवा ५०७१ ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि नेपाल मुख्यतः छोटे गांवों का देश है और यहां की ९५ प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में रहती है।—

१९६१ की जनगणना के अनुसार नेपाल की जनसंख्या ९३ ८७ ६६१ थी। प्रतिवर्ग मील जनसंख्या का घनत्व १७२ व्यक्ति है। दस वर्ष पूर्व जनसंख्या का घनत्व १५२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील था। ऐसा अनुमान है कि प्रति एक हजार के पीछे ४५ जन्म दर तथा ३० मृत्यु दर है अस्तु प्रतिवर्ष प्रति हजार पीछे १५ की वृद्धि होती है अर्थात नेपाल की जनसंख्या १५ प्रतिशत के हिसाब से प्रतिवर्ष बढ़ रही है।

प्रति व्यक्ति पीछे वार्षिक आय केवल ३५० नेपाली सिक्का है। नेपाली रुपए का मूल्य भारतीय रुपए का दो तिहाई से कुछ अधिक है। अतएव नेपाल एक अविकसित और निर्धन देश है। प्रकृति ने उसको बहुमूल्य प्राकृतिक सम्पत्ति प्रदान की है परन्तु नेपाल अभी उसका विकास नहीं कर सका है।

तीर्थभूमि नेपाल

नेपाल तीर्थ स्थलों से भरा हुआ है। तिब्बत के लोग नेपाल को नेपा कहते हैं। तिब्बती भाषा में उसका अर्थ तीर्थवासी होता है। वे लोग नेपाल को पुण्य तीर्थस्थान मानते हैं। हिन्दू धर्मावलम्बी भी नेपाल को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि यहाँ बहुत से हिन्दुओं के तीर्थस्थान हैं। बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए भी नेपाल महान तीर्थ है। तथागत भगवान बुद्ध ने यहाँ जन्म लिया था तथा स्वयम्भू चैत्य महाबौध इत्यादि प्रसिद्ध मन्दिर यहाँ हैं।

यदि देखा जाय तो नेपाल ऐसा रमणीय देश है और यहाँ ऐसे नैसर्गिक एकान्त स्थान हैं जहाँ कि आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति पहाड़ों और वनों में रह कर साधना करते रहे हैं। वनों तथा पर्वतों का शान्त वातावरण मनुष्य के मन में सर्वशक्तिमान परम पिता परमेश्वर के प्रति सहज भक्ति उत्पन्न करता है। यही कारण है कि युग-युगों से भारतीय ऋषि और साधक यहाँ आकर साधना और तपस्या करते हैं। हम नेपाल के कतिपय प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों का नीचे वर्णन करेंगे।

पशुपतिनाथ—पशुपतिनाथ का शिवमंदिर नेपाल का सबसे प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थस्थान है। यह पवित्र बागमती नदी के किनारे है। समीप ही आर्यघाट है जहाँ श्मशान तथा स्नान घाट है। यह पूर्व में हिन्दू तीर्थस्थानों में सबसे पुराने और प्रसिद्ध तीर्थस्थानों में से एक है। लाखों भारतीय हिन्दू प्रतिवर्ष फाल्गुन के महीने में शिवचतुर्दशी के अवसर पर श्रद्धा सहित यहाँ दर्शन करने आते हैं। पशुपतिनाथ के दर्शन नेपाल के हिन्दू और तिब्बत के बौद्ध सभी करते हैं। वे सभी इस पवित्र तीर्थ स्थान को अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। मंदिर की कला अत्यन्त सुन्दर है। छतों पर सोने का सुन्दर काम है। अत्यन्त दीर्घ काल से यह पवित्र मंदिर कोटि कोटि जन का श्रद्धा स्थल रहा है।

बोधनाथ—बोधनाथ को बौद्ध चैत्य भी कहते हैं। उसका स्वरूप एक स्तूप की भाँति है। स्तूप के ऊपर जो आँखें बनी हैं वे अत्यन्त प्रभावशाली और कलापूर्ण हैं। जो कमल बना है उसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हैं। नीचे चबूतरे पर प्रार्थना की मणियें हैं जिनपर पवित्र वाक्य 'ओ३म मणि पद्मे ओ३म' अंकित है।

जाड़ों में नवम्बर से एप्रिल तक तिब्बत सिक्किम भूटान तथा मध्यचीन से बौद्ध लोग यहां दर्शनार्थ आते हैं उस पर्व के समय पर सबसे महत्वपूर्ण पर्व सहस्रज्योति का पर्व होता है। उस समय समस्त मंदिर इतने सुन्दर ढंग से सजाये जाते हैं कि देवता भी उसके दर्शन को लालायित हो उठें। पूजन भी दर्शनीय और अनोखा होता है। एक हजार एक ज्योतियां स्थापित की जाती हैं। यह दृश्य संसार में एक अनोखा होता है जिसे एक बार देखकर कोई विस्मरण नहीं कर सकता। इस मंदिर का धार्मिक अध्यक्ष चिनाई लामा होता है जो दलाई लामा का प्रतिनिधि होता है।

स्वयम्भूनाथ—स्वयम्भूनाथ के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि संसार में यह सबसे प्राचीन बौद्ध मन्दिर है। ऐतिहासिक लखों के अनुसार यह अत्यन्त सुन्दर मंदिर दो हजार वर्ष प्राचीन है। यह मंदिर एक पहाड़ी पर बना है और पांच सौ सीढ़ियां चढ़ कर वहां पहुंचा जा सकता है। मुख्य मंदिर के अतिरिक्त उसमें १३ अन्य मंदिर हैं जो बौद्धों के तेरहों स्वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके स्वर्णशिखर समस्त वक्षस्थल में भव्यता भर देते हैं। मंदिर में एक विशाल बौद्ध मूर्ति है। इस अत्यन्त प्राचीन मंदिर की स्थापत्य कला और मूर्तिकला को देख नेपाल की कला की प्रशंसा करनी पड़ती है। इससे विदित है कि दो हजार वर्ष पूर्व भी नेपाल कला की दृष्टि से बहुत उन्नत था।

इसके अतिरिक्त गुहेश्वरी का मंदिर तांत्रिक बुद्धों का अत्यन्त प्राचीन और श्रद्धा का स्थान है।

चारुमती विहार को जिसे छा वाहिल भी कहते हैं प्रियदर्शी सम्राट अशोक की पुत्री राजकुमारी चारुमित्रा ने बनवाया था। आज से हजारों वर्ष पूर्व जब चारुमित्रा नेपाल आई थी तब यह विहार बना था। उसके पास ही एक दूसरा विहार है जिसे नावाज वाहिल कहते हैं। ये दोनों ही विहार अत्यन्त भव्य हैं। उनकी भवन निर्माण कला बहुत आकर्षक है। उनकी दीवारों पर भित्ति चित्र हैं जो कि मूल खनिज रंगों में बने हैं वे कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

अध्याय दूसरा

नेपाल का प्राचीन इतिहास

नेपाल के सम्बन्ध में एक अत्यन्त प्राचीन किंवदन्ती है कि महान मंजुश्री सुदूर उत्तर महाचीन के शिरशान पर्वत मंचारिया से चलकर तिब्बत के ऊँचे पठार को पार करते हुए और गगनचुम्बी पर्वत राज हिमालय के वनों को पार करते हुए नागवासा झील पर आए। नागवासा झील सलिल शुद्ध जल से भरी हुई उस पर्वतीय घाटी में स्थित थी। मंजुश्री उस झील के चारों ओर घूमते हुए झील के दक्षिणी सिरे पर पहुँचे। यहां उन्होंने अपनी तलवार को ऊंचा उठाकर जोर से चट्टानों पर मारकर चट्टानों को काट दिया। मंजुश्री द्वारा चट्टानों के काट दिए जाने से पवित्र बागमती नदी की जलधारा प्रवाहित हो गई। इस प्रकार महाभारत पर्वत से निकलकर भारत के मैदानों में बहती हुई पवित्र बागमती पटना के नीचे गंगा से मिल जाती है। इस सम्बन्ध में दूसरी किंवदन्ती यह कि भगवान विष्णु ने नागवासा झील की चट्टानों को काटकर झील के पानी को बागमती की जलधारा में प्रवाहित कर दिया।

जब झील सूख गई तो मंजुश्री और दूसरी किंवदन्ती के अनुसार भगवान विष्णु अपने सहचरों के साथ वहां बस गए और उन्हीं से नेवार जाति का जन्म हुआ जो नेपाल के आदि निवासी हैं।

हजारों वर्षों के उपरान्त भारत से एक ऋषि नेमुनी इस प्रदेश में आए। उनके साथ गुप्त या गोपाल वंश का एक राजकुमार भी था जो उस प्रदेश का शासक बन कर उस पर राज्य करता रहा। नेमुनी को उस प्रदेश के लोग इतनी गहरी श्रद्धा से देखते थे कि वह पर्वतीय घाटी उनके नाम पर नेपाल कही जाने लगी और जिस राजवंश को उन्होंने वहां स्थापित किया उसके उत्तराधिकारी अपने नामों के साथ गुप्त शब्द जोड़ने लगे। नेपाल का भारत से अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध रहा है। महाभारत और तान्त्रिक ग्रन्थों में उसके उल्लेख हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से यह भारत से सम्बन्धित था और वहां की जनसंख्या भारत से जाकर वहां बसनेवालों की ही सन्तान है।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने नेपाल पर विजय प्राप्त की थी और नेमुनी किसी गुप्त राजकुमार को लेकर नेपाल घाटी में पहुँचे। उन्होंने स्वयं अथवा उस राजकुमार के द्वारा गुप्त अथवा गोपाल राजवंश बसाया।

घाटी पर आक्रमण किया, और किरातानी शासकों का पतन हो गया। आक्रमणकारियों ने किरातानियों को घाटी से खदेड़ दिया और वे पुनः अपने पूर्व निवास स्थान पहाड़ों में चले गए। अब नेपाल की घाटी में वर्मन राजवंश का उदय हुआ और वे यहां के शासक बने। इस राजवंश का पांचवां शासक भास्करवर्मन अत्यन्त महत्वाकांक्षी और वीर था। उसने भारत के मदानों पर आक्रमण किया और पूर्व में समुद्र तक उसने भारत के मदानों को अपनी विजयवाहिनी से रौंद डाला। वर्मन राजवंश के शासनकाल में कला वाणिज्य, और साहित्य की अद्भुत उन्नति हुई। बात यह थी कि इस राजवंश के शासन काल में नेपाल की घाटी में बहुत लम्बे समय तक शान्ति रही। यही कारण था यहां की कला वाणिज्य और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। वर्मन राजवंश के इक्कीसवें उत्तराधिकारी महादेववर्मन के शासन काल में नेपाल घाटी कला वाणिज्य और साहित्य के विकास में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। महादेववर्मन स्वयं अत्यन्त विद्वान और कला प्रेमी सफल शासक था। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली था। उसके शासन काल में नेपाल राज्य नेपाल घाटी से बाहर पूर्व में फैल गया था और पश्चिम में गण्डक नदी तक उसका विस्तार हो गया। इस राजवंश के अन्तिम शासक शिवदेववर्मन के कोई पुत्र नहीं था। केवल एक पुत्री थी। शिवदेववर्मन ने अपनी पुत्री का विवाह शुद्ध सूर्यवंशी क्षत्रिय अंशुवर्मन जो ठाकुर जाति का था और सम्भवतः उत्तर भारत के अवध प्रदेश का था से कर दिया। शिवदेववर्मन ने नेपाल का सिंहासन अपने जामाता अंशुवर्मन को दे दिया और अपने सम्बन्धियों को जागीरें बांट दीं। उसके उपरान्त वह स्वयं भजन पूजन करने के लिए एकान्तवास करने मठ में चला गया।

यह छठी शताब्दी के अन्त और सातवीं के आरम्भ की घटना है। जब शिवदेववर्मन एकान्तवास में चला गया तो नेपाल की घाटी में गृह कलह अशान्ति और विपत्ति का घोर ताण्डव आरम्भ हो गया। शिवदेववर्मन अपने एकान्तवास से वापस आया और उसने स्थिति को सम्भालने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसी प्रयत्न में उसकी मृत्यु हो गई। नेपाल की घाटी में जो अशान्ति और गृह कलह उठ खड़ा हुआ था हर्षवर्धन ने पूर्वी भारत में विद्रोह को दबाने के लिए एक सेना को लेकर कूच किया। हो सकता है कि कुछ विद्रोही तत्व नेपाल की ओर भागे हों और उसने नेपाल पर भी आक्रमण कर दिया हो। परन्तु हर्षवर्धन और उसकी सेनाएं अधिक समय नेपाल में नहीं रहीं। शीघ्र ही वापस चली गई। ईसा के ६२७ वर्ष पश्चात् जब प्रसिद्ध चीनी यात्री हियान-च्वांग नेपाल में गया तो उस समय अंशुवर्मन नेपाल के राजसिंहासन पर विराजमान था। या तो अंशुवर्मन ने हर्ष की सेनाओं को मार भगाया था अथवा हर्ष ने अपनी सेनाओं को वापस लौटने की आज्ञा दी थी यह कहना कठिन है।

उस समय नेपाल की घाटी में नेवार जाति के लोग अपनी कारीगरी में शान्तिपूर्वक व्यस्त थे और हिन्दू तथा बौद्ध धर्म दोनों का ही

प्रचलन था।

अमसुवमन जो ठाकुर जाति का था उससे ठाकुर राजवंश का आरम्भ हुआ। अमसु अत्यन्त वीर शक्तिवान और प्रभावशाली था। उसकी वीरता विद्वत्ता शौर्य इत्यादि की कहानियाँ नेपाल के इतिहास में ही नहीं चीन और तिब्बत के इतिहास में भी बहुत मिलती हैं। इससे पता चलता है कि अमसु नेपाल का अत्यन्त प्रतापी शासक था। वह बहुत बलिष्ठ, आकर्षक व्यक्तित्ववाला और महान प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था। उसके शासन काल मे विज्ञान साहित्य शिक्षा (प्रथम संस्कृत व्याकरण उसके शासन काल मे ही लिखा गया) और वाणिज्य का बहुत अधिक विस्तार हुआ। उसने शासन का भी विकास किया। उसके समय मे उसका शासन उत्तर में तिब्बत की सीमा और दक्षिण मे भारत की सीमा को छूता था।

उसकी प्रशंसा मे नेपाल के तत्कालीन ग्रन्थों मे उसके समकालीन लेखकों ने लिखा है— 'उसके गुणों के कारण उसका यश समस्त पृथ्वी पर फैल गया था। उसके शासन काल तक देवता सशरीर नेपाल की घाटी मे प्रकट होते थे। उसके बाद देवता लोग अदृश्य हो गए।'

अब हम नेपाल के उत्तर में तिब्बत अर्थात भोट (तिब्बत का वास्तविक नाम भोट है आज भी वह इसी नाम से प्रसिद्ध है) की ओर दृष्टिपात करें। इसी समय से तिब्बत का नेपाल से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ था। भोट (तिब्बत) उस समय का पूर्ण एक राष्ट्र नहीं था वहां घूमने फिरने वाले कबीले रहते थे। वे बलिष्ठ कठोर जीवन के अभ्यस्त और लड़ाकू थे। उन कबीलों का मुखिया 'नाम्र स्रोंग बत्सन' के शासन काल मे तथा उसके योग्य उत्तराधिकारी स्रोंग–बत्सन गाम्पों के नेतृत्व मे तिब्बत एक बड़ा और संगठित राष्ट्र बन गया। उसने एक लाख सैनिकों की एक प्रबल सेना का निर्माण किया और सिक्किम और भूटान को विजय करता हुआ भारत तक पहुँच गया। यद्यपि बाद को भूटान और सिक्किम स्वतन्त्र हो गए। उसने चीन भारत और नेपाल के दरबारों में अपने राजदूत नियुक्त किए। उसने एक मिशन भारत इस उद्देश्य से भेजा कि वह वहाँ के शिक्षा केन्द्रों मे जाकर भोट भाषा (तिब्बती भाषा) के लिए एक लिपि खोज निकाले। जब वह मिशन लौटकर आया तो उस तरुण और प्रतिभावान शासक ने उस लिपि का देश में प्रचार कराया और तिब्बत को एक लिपि प्राप्त हुई जिससे तिब्बत में भविष्य के लिए शिक्षा और साहित्य के निर्माण का मार्ग खुला।

उसी समय तिब्बत का नेपाल से सम्बन्ध स्थापित हुआ। अमसु ने 'भोट' की प्रभुता को स्वीकार कर लिया। जब 'स्रोंग बत्सन' नेपाल की अतीव सुन्दरी अमसु की पुत्री के सौन्दर्य से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की तो अमसु ने उसको स्वीकार कर लिया। नेपाल राजकुमारी तिब्बत की राजमहिषी बनकर तिब्बत मे आ गई। नेपाल राजकुमारी बौद्ध धर्म की अनन्य भक्त थी। वह अपने साथ तथागत भगवान बुद्ध के अवशेष तथा अन्य धार्मिक चिह्न तथा धार्मिक ग्रन्थ लेकर पति के साथ गई। उसने अपने

सैनिक पति को बौद्ध धर्म का अनुयायी बना दिया और अपने पति के द्वारा उसने तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। क्रमशः तिब्बत के निवासियों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। 'सान्ग-त्सन गाम्पो' के पास अब सभ्य जीवन की तीन आवश्यकताएं उपलब्ध थीं। उसके देश में लिपि का प्रचार हो रहा था। उससे साहित्य का और शिक्षा का विकास हो रहा था, देश में एक ऊंचा और परिष्कृत धर्म फैल चुका था और उसकी पत्नी सुनिश्चित उच्च वंश की विदुषी महिला थी।

अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर उसने चीन के सम्राट 'ताई-त्सुंग' को एक आज्ञा भेजी कि वह अपनी राजकुमारी उसको पत्नी के रूप में दे दे। चीन के सम्राट ने अत्यन्त अप्रसन्नतापूर्वक अपमान जनक शब्दों में तिब्बत के तरुण शासक की मांग को ठुकरा दिया। तिब्बत के उस तरुण शासक ने चीन पर आक्रमण कर दिया। जब तिब्बत की सेनाएं चीन प्रदेश को विजय करती हुई सम्राट ताई-त्सुंग की राजधानी चंगान के समीप पहुंच गईं तब विवश होकर चीन सम्राट को अपनी पुत्री राजकुमारी 'वेन-चांग' को उसे देना पड़ा। यह घटना सन ६४१ ईसवी की है। राजकुमारी वेन-चांग के साथ बौद्ध धर्म की बहुत सी पुस्तकें, अन्य धार्मिक वस्तुएं तथा बुद्ध भगवान की एक भव्य मूर्ति भी ल्हासा तिब्बत की राजधानी पहुँची। उसने तथा नेपाली राजरानी श्री वरसन' दोनों ने मिलकर तिब्बत में बौद्ध धर्म का इतनी लगन से प्रचार किया कि लामा धर्म में उन्हें श्वेत-तारा और हरित-तारा (देवी) के नाम से पुकारा जाता है।

उस समय से तिब्बत में नेपाली जो कि वास्तव में भारतीय संस्कृति और हस्तकला है उसका प्रभाव बढ़ता गया और चीनी प्रभाव कम होता गया।

तिब्बत, नेपाल तथा सिक्किम के मार्ग से कठिन पहाड़ी दर्रों और मार्गों से उस समय भारत से व्यापार होने लगा था। चीन का एक मिशन भारत में आया। परन्तु वहां उसके साथ दुर्व्यवहार हुआ। किसी प्रकार उन्होंने भाग कर अपनी जान बचाई। चीनी मिशन का नेता 'वांग-ह्युन-सी' नेपाल गया और वहां उसने सहायता मांगी। अमसू की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र 'नरेन्द्र-देव' सिंहासन पर था। उसने चीनी मिशन का स्वागत किया। तिब्बत का शासक जिसे तिब्बत का सिकन्दर भी कहते हैं उसने जब यह सुना तो वह अपनी सेना लेकर नेपाल में आया। वहां उसने और सेना ली और तिरहुत पर आक्रमण कर दिया। भारतीय सेना पराजित हुई और उसने वहां के शासक तथा उसके परिवार को कैद कर चीन भेज दिया।

नरेन्द्र देव अत्यन्त बुद्धिमान और सफल शासक था दूसरे वर्ष उसने चीन को एक नेपाली मिशन भेजा इस प्रकार चीन से नेपाल के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ हो गए और दोनों देशों में व्यापार होने लगा। चीनी यात्री अधिक संख्या में नेपाल आने लगे। नेपाल के शासक ने हिन्दू और बौद्ध पवित्र स्थानों का जीर्णोद्धार कराया, नहरें खुदाईं और झरनों के जल का सिंचाई के लिए उपयोग किया और अपनी

कर प्रणाली का सुधार किया। नेपाल नरेन्द्रदेव के शासनकाल में समृद्धिशाली बन गया और वहाँ की प्रजा सुखी थी।

नरेन्द्रदेव की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र वरदेव सिंहासन पर बैठा। उसके शासनकाल में भगवान शंकराचार्य नेपाल आए। वरदेव उनका भक्त हो गया और उसने बौद्ध धर्म का नेपाल से मूलोच्छेद करने का प्रयत्न किया। उसके शासनकाल में बौद्ध मंदिरों का विनाश हुआ, बौद्ध साहित्य को नष्ट किया गया और बौद्ध धर्माचार्यों पर अत्याचार हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि बौद्ध धर्म नेपाल में क्षीण हो गया किन्तु नष्ट नहीं हुआ।

ठाकुर राजवंश के लम्बे शासनकाल में नेपाल की घाटी में खेती के अतिरिक्त व्यापार का बहुत विकास हुआ और कांतीपुर (काठमांडू) तथा पाटन प्रसिद्ध व्यापारिक मंडियां बन गए।

ठाकुरी राजवंश के उपरांत अंशुवर्मन के ही वंश की एक शाखा का नेपाल की घाटी पर शासन हो गया। परन्तु इसके उपरांत राजवंश जल्दी जल्दी बदलते रहे परन्तु जो भी राजवंश नेपाल की घाटी में शासन करते रहे वे ठाकुर राजवंश से ही सम्बन्धित थे।

इन राजाओं ने बाद को नेपाल की घाटी को तीन छोटे-छोटे राज्यों में बांट दिया। इस बीच में राजवंश का नाम 'मल्ल' पड़ गया था। बात यह थी कि अरिदेव राजा जब कुश्ती लड़ रहे थे तब उन्हें सूचना दी गई कि राजकुमार का जन्म हुआ है। राजा अरिदेव ने उसको मल्ल की उपाधि दे दी। तभी से मल्ल राजवंश का उदय हुआ। जब आनन्दमल्ल राजा बना और उसने भक्तपुर (भटगांव) बसाया तो उसने कांतीपुर (काठमांडू) और पाटन अपने भाई को दे दिया और भटगांव पर स्वयं शासन करने लगा। इस प्रकार नेपाल की घाटी में तीन राज्य बन गए। यह ऐसी भूल थी कि जिसके कारण नेपाल की घाटी की राजनीतिक स्थिति निर्बल हो गई। अब नेपाल में कांतीपुर (काठमांडू) पाटन और भटगांव तीन राज्य हो गए।

१०९७ में नान्यदेव नामक एक दक्षिणी राजपूत ने जो कि उस समय सिमरांओ अर्थात तिरहुत का शासक था जो कि नेपाल के बहुत समीप है (रक्सौल से बीस मील दूर) उसने नेपाल की घाटी पर आक्रमण किया और तीनों राज्यों को अस्थायी रूप से ही सही समाप्त कर दिया। उसी समय पश्चिम के पर्वतीय प्रदेश से खास जाति के परबतिया नेपाल की घाटी में आकर बसे और वहां व्यापार करने लगे। कालांतर में उनमें से कुछ बहुत प्रभावशाली और महत्वपूर्ण नागरिक बन गए।

सन् ग्यारह सौ ईसवी में तत्कालीन राजा हरिदेव के दरबार में नागर जाति का एक परबतिया ऊंची स्थिति में पहुंच गया था। दरबार में नेपाल घाटी के मंत्री उससे ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने षड्यंत्र करके उसको पदच्युत करवा दिया। इस अपमान से वह बहुत नाराज हुआ और वह अपने पैतृक गृह पश्चिम में तानजिंग अर्थात पाल्पा गया। वहां के राजा को उसने अपने अपमान की कथा सुनाई और बतलाया कि नेपाल की घाटी अत्यन्त समृद्धिशाली प्रदेश है। काठमांडू की गलियों में सोना बिखरा रहता है। वहां का बाजार बहुमूल्य वस्तुओं से भरा हुआ है और वहां के व्यापारियों के पास कल्पनातीत धन है। तानजिंग पाल्पा के राजा मुकुन्दसेन ने नेपाल की घाटी के वैभव को सुनकर अपने राज्य की निर्धनता से तुलना की तो

उसका हृदय लोभ और ईर्ष्या से गया। उसने नेपाल की घाटी पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। जब मुकुन्दसेन की सेना मैदान में उतरी और उसने नेपाल की घाटी पर आक्रमण किया तो हरिदेव युद्ध करने आया। नेपाल की घाटी के चावलों के खेतों में भयंकर युद्ध हुआ। नेपाल की घाटी के सैनिकों को अभी तक ऐसे लड़ाकू, वीर साहसी और भयंकर क्षत्रिय और मागर सैनिकों से पाला नहीं पड़ा था। हरिदेव की सेना बुरी तरह परास्त हुई। मुकुन्दसेन की सेना ने उसे नष्ट कर दिया। तीनों नगरों में भय और घबराहट छा गई। विजयी सेना ने भयंकर नरमेध किया मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ डाला और लूटपाट कर बहुत सा धन ले गए।

किंवदन्ती है कि मुकुन्दसेन जिस समय पाटन आया उस समय पुरोहित मच्छेन्द्रनाथ का पवित्र पर्व मनाने की तैयारी कर रहे थे। पुजारी लोग भय से भाग खड़े हुए। उस समय भगवान के ऊपर बने फव्वारे रूपी सर्पों के मुख से देवता तथा मुकुन्दसेन पर सुन्दर फूलों की वर्षा हुई। मुकुन्दसेन ने आश्चर्य चकित होकर भगवान की मूर्ति पर अपने घोड़े की गर्दन से बंधी हुई सोने की जञ्जीर फेंकी जिसे भगवान मच्छेन्द्रनाथ ने लेकर अपनी गर्दन के चारों ओर लपेट लिया। किंवदंती यह है कि आज भी सोने की वह चेन उनकी गर्दन में लिपटी हुई है।

परन्तु भगवान पशुपतिनाथ मुकुन्दसेन के अधार्मिक कार्यों से इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने दैवी महामारी को मुकुन्दसेन की सेना नष्ट करने के लिए भेजा। चौदह दिन में मुकुन्दसेन की वीर वाहिनी नष्ट हो गई और वह भी भेष बदल कर पहाड़ों की ओर भागा। वह कठिनाई से दवी घाट तक पहुँचा जहां ताड़ी और त्रिशूली नदियां मिलती हैं। वहां वह गिर पड़ा और मर गया।

यह प्रथम अवसर था कि नेपाल की घाटी के लोगों ने पश्चिम के पर्वतियों की युद्ध-कुशलता और शौर्य को देखा। मुकुन्दसेन के इस विध्वंसकारी आक्रमण से नेपाल की घाटी में सर्वत्र विध्वंस के चिन्ह दिखलाई पड़ते थे। इस वर्ष तक नेपाल की स्थिति बहुत खराब रही।

मुकुन्दसेन की सेना के नष्ट हो जाने के उपरान्त नवकोट के ठाकुर पुनः उस घाटी में आए और उन्होंने पुनः अपना शासन जमा लिया। उसके उपरांत वे दो सौ वर्षों तक नेपाल की घाटी में राज्य करते रहे। चौदहवीं शताब्दी में नेपाल में अयोध्या राजवंश का राज्य रहा। यह राजवंश किस प्रकार नेपाल में आया इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः तिरहुत का राजा हरीसिंह दिल्ली सुल्तान मुहम्मद बिन-तुगलक से पराजित होकर नेपाल की घाटी में घुस आया और अन्तिम ठाकुर राजा को पराजित कर वहां का शासक बन बैठा। बात यह थी मुहम्मद बिन तुगलक ने उसके राज्य को छीन लिया था और उसके किले को घेर लिया था। हरीसिंह किसी प्रकार पीछे से निकल कर नेपाल में घुस गया और २२६ वर्ष पूर्व जिस प्रकार उसके पूर्वज नान्यदेव ने नेपाल के सिंहासन को विजय किया था उसी प्रकार उसने नेपाल के राजसिंहासन को पुनः प्राप्त किया। यह घटना सन् १३२६ ईसवी की है। सौ वर्षों तक अयोध्या राजवंश ने नेपाल की घाटी में राज्य किया। अयोध्या राजवंश के शासनकाल में जयस्थिति नामक ठाकुरमल्ल राजकुमार जिसके पूर्वज भारत से आए थे और जिन्होंने नेपाल की घाटी के नगरों पर शासन किया था

प्रधान मंत्री बना। वह इतना शक्तिवान और प्रभावशाली था कि राजा केवल नाममात्र का था। सारी शक्ति जयस्थिति प्रधान मंत्री के हाथ में केंद्रित थी। जयस्थिति और उसके पुत्र ने नेपाल में ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित कर दिया। उसके परिणामस्वरूप नेपाल की प्रजा का दृष्टिकोण ही बदल गया।

कालांतर में अंतिम अयोध्या वंश के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह ठाकुरमल्ल वंश के राजकुमार से कर दिया और वह नेपाल का शासक बना। यह तीसरा ठाकुर राजवंश था जो नेपाल के राजसिंहासन पर आया। तीसरे ठाकुर राजवंश में एक महान शासक यक्षमल्ल (१४२९-६०) हुआ उसने मुस्लिम शासन के निर्बल होने पर मोरंग और तिरहुत को भी अपने राज्य में मिला लिया। नेपाल के प्राचीन इतिहासकारों ने तो लिखा है कि उसने बिहार में बोध गया तक अपना राज्य विस्तार कर लिया था। उत्तर में उसने तिब्बत पर आक्रमण किया और 'शेखर जोंग' पर अधिकार कर लिया। पश्चिम में उसने छोटे से गोरखा राज्य को भी अपने अधिकार में कर लिया। उसने काठमांडू और पाटन के राजाओं को भी पराजित किया था।

यक्षमल्ल जब अपनी मृत्युशय्या पर पड़ा था तो उसने अपने राज्य को विभाजित कर चार-चार राज्यों में बांट दिया। काठमांडू, भटगांव, पाटन और काठमांडू के पूर्व में दस मील दूर बनेपा। चार राज्यों की राजधानियां थीं। चारों राजधानियां एक दूसरे के समीप कुछ ही मील की दूरी पर स्थित थीं। उनके राज्य उनके पीछे दूर तक उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम में फैले हुए थे। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके सुदूर क्षेत्र उनके राज्य से निकल गए और भाई आपस में लड़ने लगे। अन्ततः केवल दो राज्य रह गए—भटगांव और काठमांडू। १७६९ तक यही स्थिति रही।

यक्षमल्ल की मृत्यु के उपरान्त उसके तीसरे पुत्र रत्नमल्ल को काठमांडू का राज्य मिला परन्तु उसको अपने राज्य पर अधिकार करने के लिए नवकोट के ठाकुरों से १४७१ में लड़ना पड़ा। नवकोट के ठाकुरों को परास्त कर रत्नमल्ल ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया। इसके उपरान्त वह भूटान और तिब्बत से लड़ बैठा। उसकी पराजय निश्चित थी। किन्तु पाल्पा का परवर्तिया राजा मुकुन्दसेन का वंशज उसकी सहायता को आ गया और उसकी विजय हो गई। अपनी रक्षा और विजय के उपलक्ष्य में उसने ब्राह्मणों को बहुत दान दिया और हिन्दू धर्म को और अधिक मान्यता और आश्रय प्रदान किया। नेपाल के इतिहास पर भविष्य में इसका स्थायी प्रभाव पड़ा।

रत्नमल्ल का एक उत्तराधिकारी '[illegible]' अत्यन्त अत्याचारी था। उसको घोड़ों का बहुत शौक था। वह अपने घोड़ों को खेतों में चरने के लिए छोड़ देता था। इससे किसानों की खड़ी फसल नष्ट हो जाती थी। इसके अतिरिक्त जिस किसी सुन्दर स्त्री पर वह आकर्षित हो जाता उसको पकड़ मंगवाता। इस अत्याचार से प्रजा विद्रोही हो उठी और उसको काठमांडू से निकाल बाहर किया गया।

उधर नेपाल की घाटी में १७६९ तक दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं और हुई। कान्तीपुर के राजा लक्ष्मी नरसिंह ने काठ का एक बहुत बड़ा विश्रामगृह काष्ठमांडू बनवाया जिसके कारण कान्तीपुर का नाम काठमांडू प्रसिद्ध हो गया। नेपाल के प्राचीन ग्रंथों में इस सम्बन्ध में अनेक लिखी कथा प्रसिद्ध है।

लक्ष्मी नरसिंह के शासनकाल में एक दिन भगवान मच्छन्द्रनाथ की यात्रा का उत्सव था। स्वर्ग से कल्पतरु पुरुष वेश में उस उत्सव को देखने के लिए आया। उसको एक व्यक्ति ने पहचान लिया और उस समय तक नहीं छोड़ा जब तक उसने यह वचन नहीं दे दिया कि उसके प्रभाव से वह व्यक्ति एक पेड़ के तने से एक बड़ा विश्रामगृह बना सकेगा। इस घटना के चौथे दिन कल्पतरु ने एक साल का वृक्ष भेजा और उस व्यक्ति ने राजा से आज्ञा लेकर उस साल के वृक्ष को चिरवा कर उसकी लकड़ी से सातल बनाया और उसका नाम 'माडू सातल' रक्खा। क्योंकि वह एक ही वृक्ष की लकड़ी से बना था उसका नाम काठमांडू हो गया और उसके कारण ही कान्तीपुर को लोग काठमांडू कहने लगे।

लक्ष्मी-नरसिंह क्रोधी था। उसने ईर्ष्यावश अपने एक मंत्री भीममल्ल को मरवा डाला। भीममल्ल की पत्नी सती हो गई। उसने चिता पर बैठकर यह श्राप दिया कि 'दरबार में कभी न्याय नहीं होगा'।

लक्ष्मी-नरसिंह पश्चात्ताप और श्राप के भय से पागल हो गया। सन् १७०२ में भास्करमल्ल की प्लेग से मृत्यु हो जाने पर यह सूर्यवंशी राज घराना समाप्त हो गया। किंवदन्ती यह है कि उसने दशहरे का उत्सव उस निकृष्ट मास में मनाया कि जो कभी कभी नवाल में आता है। भास्करमल्ल ने बहुत कुछ दान धर्म किया परन्तु वह उस रोग से न बचा और उसके साथ ही वह राजवंश समाप्त हो गया।

इस काल में दूसरी महत्वपूर्ण घटना १७३६ में हुई जबकि गोरखा राजा नरभूपाल विद्रोही होकर काठमांडू के सिंहासन पर अपने वंश का दावा करने लगा और उसने पूर्व में नवकोट तक अपना अधिकार कर लिया। नवकोट काठमांडू से केवल पन्द्रह मील था। तत्कालीन नेपाल की घाटी के शासक जय प्रकाश से उसका युद्ध हुआ। जयप्रकाशमल्ल ने उसे पराजित कर पीछे खदेड़ दिया।

पराजित गोरखा राजा नरभूपाल १७४२ में स्वर्गवासी हो गया और बारह वर्ष की आयु में उसका पुत्र पृथ्वीनारायन गोरखा राजसिंहासन पर बैठा। पृथ्वीनारायन ने इतिहास को बदल दिया और तभी से समस्त देश पर गोरखा राजवंश का शासन स्थापित हो गया। आइए देखें कि यह गोरखा कौन थे।

अध्याय तीसरा

पालपा-किरान्ती और छियालीस राज्य

नेपाल के इतिहास में मकवानपुर अथवा पालपा राज्य का महत्व पूर्ण स्थान है इस कारण उसके सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। हमे पालपा के इतिहास को जानने के लिए पीछे लौटना होगा और सन् १३०० ईसवी में जाना होगा।

नेपाल की घाटी के दक्षिण मे पहाड़ियों के साथ साथ जहां से भारत को मार्ग आते हैं एक राजा करमसिंह राज्य करता था। उस प्रदेश में मावर जाति के लोग रहते थे। एक समय इस मावर जाति का विशाल राज्य था जिसकी राजधानी गोरखपुर थी अपितु समस्त दक्षिण नेपाल ही उस राज्य में नहीं था वरन तिरहुत (बिहार) का प्रदेश भी उस राज्य का एक भाग था। परन्तु कालांतर मे आपसी झगड़ों तथा बाहरी आक्रमणों से वह विशाल राज्य छोटे छोटे टुकड़ों में बट कर नष्ट हो गया। उस राज्य का एक अधि शेष भूभाग छोटा-सा राज्य गंडक नदी के पश्चिम के प्रदेश मे था उसकी राजधानी राजपुर था। जहां गंडक नदी भारत मे प्रवेश करती है उस राज्य का शासक करमसिंह था। उसके दो भाई थे एक कोसी नदी के प्रदेश का शासक था दूसरा तिरहुत का शासक। तीनों भाइयों में लगातार युद्ध होता रहता अतएव प्रत्येक भाई एक दूसरे से सतर्क रहता था। इसी कारण करमसिंह किरांती सैनिकों की एक सेना राजधानी के समीप पहाड़ी प्रदेश मे रखता था।

जब चित्तौरगढ़ का पतन हुआ और बहुत-से राजपूत वीर उत्तर मे हिमालय स्थित नेपाल में चल आए तो उस समय सात सौ वीर राजपूत सैनिकों का एक दल करमसिंह के पास पहुंचा और करमसिंह की सेना में नौकरी करने की इच्छा प्रकट की। उन राजपूत सैनिकों के दो सेनापति थे। एक का नाम जिल था और दूसरे का नाम अजिल था। बाईस वर्ष तक वे लोग करमसिंह की सेवा मे रहे। तद्‌उपरान्त उन्होंने विद्रोह कर दिया तथा करमसिंह मारा गया और अजिल सेन राजा बना। अजिल सेन के पुत्र मुला सेन मे पहाड़ों पर मकवानपुर का दुर्ग बनवाया। उस सुदृढ़ दुर्ग से उसने समीपवर्ती प्रदेश को जीतना आरम्भ किया। क्रमशः उसने पुराने मावर राज्य को पुन एक बड़े राज्य का स्वरूप दे दिया और मावर प्रदेश के पहाड़ी भाग पर भी अपना अधिकार कर लिया। उसके उत्तराधिकारी ने उस प्रदेश मे और बहुत सा भाग विजय किया और पालपा नगर को विजय कर लिया। रुद्रसेन मकवानपूर राजवंश का पहला शासक था जिसने अपने को 'पाल्पा का राजा' घोषित किया। रुद्रसेन के पुत्र मुकुन्दसेन प्रथम एक बहुत बड़े राज्य का स्वामी

बना। उसका राज्य दक्षिण में मकवानपुर से सागर तथा गुरग प्रदेश तक फैला हुआ था। उसने अपने इस विशाल राज्य को अपने चारों लड़कों में बाँट दिया। सबसे बड़े लड़के को उसने गंडक नदी के पश्चिम का प्रदेश दिया। दूसरे पुत्र मानिक को उसने पाल्पा दिया, विहंगा को तानाहुन का प्रदेश और लोहंगा को मकवानपुर का प्रदेश दिया।

इनमें लोहंगा अत्यन्त पराक्रमी और तेजस्वी था। उसके राज्य के पूर्व में राजा विजयनारायन राज्य करता था जो कामरूप (आसाम) से आया था। उसके राज्य में कोसी और कनकाई नदियों के बीच मोरंग का प्रदेश और महानदी तक तराई का थोड़ा भाग सम्मिलित था। यह राजा घमंडी और सनकी था। उस राजा ने एक किरान्ती नायक सिंघराय को उसके योद्धाओं सहित अपनी सेवा में रख लिया। उन सैनिकों की सहायता से उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया और राज्य का विस्तार किया। इसके उपरान्त उसने विजयपुर नाम से एक नई राजधानी बसाई जो पहाड़ों पर स्थित थी और विजय नारायण की उपाधि धारण की। सिंघराय का प्रभाव बढ़ गया था। राजा विजयनारायन उसको जब समाप्त कर देना चाहता था। सिंघराय शुद्ध हिंदू नहीं था। उसने किसी हिंदू की को भ्रष्ट कर दिया उस बहाने राजा ने उसको पकड़वा कर मार डाला।

सिंघराय का पुत्र बाजूराय अपने किरान्ती सैनिकों सहित मकवानपुर भाग गया। उसने मकवानपुर के तरुण राजपूत राजा से प्रार्थना की कि यदि वह उसकी सहायता करे तो वह अपने पिता के वध का बदला लेना चाहता है। यदि वह सहायता करेगा तो वह राजा विजयनारायन का राज्य उसके चरणों में भेंट कर देगा। किन्तु मकवानपुर और विजयपुर के बीच में कोसी नदी के पश्चिम में बहुत-से छोटे-छोटे राज्य थे। लोहंगा के लिए इससे अच्छा अवसर अपने राज्य का विस्तार करने के लिए और कौनसा हो सकता था। अस्तु उसने बाजूराय के किरान्ती सैनिकों की सहायता से एक के बाद दूसरे छोटे राज्य को हड़पना आरम्भ कर दिया। जब उसने 'गिधा' पर आक्रमण किया तो उसके राजा ने इतने भीम वेग से प्रत्याक्रमण किया कि लोहंगा की सेना पराजित होकर भागने ही वाली थी कि अकस्मात् गिधा का राजा मारा गया और लोहंगा की विजय हो गई। वहाँ से आगे बढ़कर उसने विजयपुर पर आक्रमण करना चाहा परन्तु वहाँ पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि राजा विजयनारायन की मृत्यु हो चुकी है। अतएव उसे लड़ना नहीं पड़ा और विजयपुर पर उसका अधिकार हो गया।

बाजूराय इस युद्ध में मारा गया। इस प्रकार किरान्ती सैनिकों की सहायता से लोहंगा ने एक विशाल राज्य की स्थापना की जिसकी सीमाएं पश्चिम में आदिया नदी और पूर्व में महानदी तक और उत्तर में तिब्बत से लेकर दक्षिण में भारत के मैदानों को छूती थीं। बाजूराय का पुत्र किरान्तियों का नायक बना।

लोहंगा की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी एक दूसरे से लड़ने लगे। किरान्ती सेनानायक जिसका पक्ष लेता वही विजयपुर के सिंहासन पर बैठता था। अन्त में किरान्ती सेनानायक ने करमसेन को विजयपुर के सिंहासन पर बिठाया। सन् १७७२ में करमसेन की मृत्यु हो गई। उसका एक ही पुत्र था जिसे वह अपने स्वामिभक्त किरान्ती सेनानायक के संरक्षण में

छोड़कर मर गया। १७७२ में गोरखा आक्रमण हुआ।

आइए अब हम पालपा की ओर दृष्टिपात करें। यहा लोहंगा का भाई मानिक राजा था। मानिक का वंश समाप्त हो गया और लोहंगा के सबसे बड़े भाई विनायक के उत्तराधिकारियों का पाल्पा पर अधिकार हो गया। पाल्पा के नेतृत्व में 'नायरकोट' रिसिंग छिरिंग अरघां खाँचीं और गुल्मी' मागर राजपूत राजाओं ने एक संघ बना लिया था।

नरभूपाल गोरखा जिसने १७३६ में काठमांडू पर असफल आक्रमण किया गोरखा का राजा था। उसने पालपा के राजा गधवसेन की बहिन से विवाह किया था। उसी रानी से पृथ्वीनारायन पैदा हुआ। गधवसेन की मृत्यु पर उसका पुत्र मुकुंदसेन पालपा के सिंहासन पर बैठा। अस्तु पृथ्वीनारायन मुकुंदसेन (पालपा के राजा) का ममेरा भाई था।

१७४० में नपाल का राजनीतिक मानचित्र नीचे लिखे अनुसार था।

नपाल की घाटी के पूर्व और दक्षिण में लोहांग का विशाल राज्य का सम्भावनाय था जिसकी राजधानी विजयपुर थी। उत्तर पूर्व तथा पूर्व में स्वतंत्र किराती राज्य था। पश्चिम में गोरखा राज्य था जो नाममात्र को काठमांडू के अधीन था जिसके राजा नरभूपाल गोरखा ने काठमांडू पर असफल आक्रमण किया था।

उसके पश्चिम में चौबीस तथा बाईस छोटे छोटे रजवाड़े थे। यह चौबीसा और बाईसा कहलाते थे। चौबीसा राज्य गुरंग और मागर प्रदेश के राज्य थे। उनके भी पश्चिम में बाईसा राज्य थे। उनमें सबसे बड़ा राज्य जुम्ला' उत्तर में हिमालय के ढालों पर स्थित था।

यह छियालीस छोटे छोटे राज्य भारत से आए हुए राजपूतों ने स्थापित किये थे। इनमें बहुत-से तो बहुत ही छोटे राज्य थे। राजधानी के आसपास दो चार मील भूमि ही राज्य था। यह छोटे राज्य अपनी सुरक्षा के लिए चार पांच मिल कर किसी बड़े राज्य के नेतृत्व में संघ बना लेते थे। उदाहरण के लिए, पालपा के नेतृत्व में एक संघ था। इसी प्रकार लामजंग' और तीरकोट के नेतृत्व में भी इन राज्यों के संघ बने हुए थे। केवल गोरखा' राज्य ही पृथक था। वह किसी संघ का सदस्य नहीं था। गोरखा राज्य पश्चिम में मरसियागडी नदी और पूर्व में त्रिशूल नदी तक फैला हुआ था। कहने को वह नाममात्र को नपाल के राजा के अधीन था परन्तु वह नपाल को बराबर चुनौती देता रहा।

यह छियालीस रियासतें जुम्ला जो कि सबसे बड़ी रियासत थी जो उसके राजा को अपना अधीश्वर मानती थीं परन्तु अवसर होने पर वे उसकी सत्ता को चुनौती भी दे देती थीं।

जब पृथ्वीनारायन का नपाल में उदय हुआ उस समय नपाल का ऊपर लिखा राजनैतिक मानचित्र था।

पूर्वीय नपाल के किराती

नपाल की वंशावलियों में किराती जाति के सम्बन्ध में नीचे लिखा उल्लेख है —

द्वापर युग ८,६४,००० वर्ष तक चला। किराती नपाल में द्वापर युग के पद्रह हजारवें वर्ष में आए और उन्होंने नपाल पर दस हजार वर्ष तक

राज्य किया। किरातों के पश्चात देवता नेपाल में आए।

इसमें इतना सत्य अवश्य है कि पूर्व ऐतिहासिक काल में किरातियों ने नेपाल की घाटी को विजय कर उस पर शासन किया और बहुत काल व्यतीत हो जाने के उपरान्त अधिक सभ्य जाति ने उनको नेपाल की घाटी से निकाल बाहर किया। ये लोग जिन्हें वंशावली में देवता कहा गया है भारत से आई हुई जातियाँ थीं जो हिन्दू या बौद्ध थे।

यह किराती कौन हैं? आज वे लिम्बू और राय के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह दोनों जातियाँ भी युद्धप्रिय और कुशल तथा वीर सैनिक होती हैं। ये मागर तथा गुरुंग की भाँति ही रणकौशल वीरता और कष्टसहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध हैं। यही कारण था कि ब्रिटिश सेना में उन्हें भी गुरखों के नाम से ही भर्ती किया जाता था।

हिन्दुओं के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ यहाँ तक कि वेदों में भी किरातों का उल्लेख मिलता है। यह कह सकना कठिन है कि किरात शब्द का उपयोग उत्तर भारत के हिमालय प्रदेश, पूर्व में आसाम की पहाड़ियों नागा खासिया और बरमा की सीमा पर रहनेवाले सभी पीले वर्ण के लोगों के लिए किया जाता था अथवा वह कोई जाति विशेष थी। सम्भवतः यह किरातों जाति समस्त पहाड़ी प्रदेश में फैली हुई थी। भारत के राजाओं ने उनके राज्यों को विजय कर उन्हें पहाड़ों में ढकेल दिया था। महाभारत में किरातों का बहुत अधिक विवरण मिलता है। भीम और अर्जुन को कई बार किरातों से लड़ना पड़ा था। कामरूप के सम्राट भगदत्त की सेना में किरातों और चीनी पीले बहुत अधिक थे। उनका उल्लेख करते हुए लिखा है कि किराती और चीनी सैनिक मानो स्वर्ण के बने हुए हैं। उनकी सेना पीले फूलों का वन जैसी दिखलाई पड़ती थी। रामायण में भी उनके स्वर्ण जैसे वर्ण का उल्लेख मिलता है। जो भी हो ऐसा प्रतीत होता है कि किराती तिब्बत के आदि निवासी थे और फिर भारतीय जातियों के संसर्ग से यह जाति उत्पन्न हुई। किरातियों की याक्थुम्बा जाति बाद को चलकर लिम्बू कहलाने लगी और 'लिम्बू' और 'यक्खा' शाखाओं से 'रायों' का उदय हुआ। राय नाम तो बहुत नवीन है। सन् १७८० में जब नेपाल युद्ध के उपरान्त किराती नेपाल के गुरखा नरेश से पराजित हुए तो नेपाल सम्राट ने उनके कतिपय प्रभावशाली सैनिक नेताओं को अपने आधीन कुछ जिलों का शासक बना दिया जिससे कि किराती लोग उपद्रव न करें और शान्त रहें। इन जिला शासकों को उसने 'राय' की उपाधि दी। कालान्तर में यह उपाधि सम्पूर्ण जाति की बन गई और वे सभी राय कहे जाने लगे। इसी उद्देश्य से 'सुबा' की उपाधि लिम्बू जाति के प्रभावशाली नेताओं को दी गई थी परन्तु वह भी समस्त जाति की उपाधि बन गई।

'सुनवार' अथवा 'सुनपार' जाति के लोग राय और गुरुंग जाति के बीच में बसे हुए हैं। सुनकोसी नदी के दोनों किनारों पर बसे होने के कारण उनका नाम सुनवार या सुनपार पड़ गया। यद्यपि आरम्भ में उनकी एक पृथक जाति थी और सम्भवतः वे तिब्बत से आकर नेपाल घाटी के उत्तर में बसे थे परन्तु अब उनमें गुरुंग और राय के रुधिर का बहुत मिश्रण हो चुका है। वे बुद्ध और शिव दोनों को ही मानते हैं।

गुरखा विजय के पूर्व किराती अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र थे। नेपाल

की घाटी के पूर्व मे जो प्रदेश है उसी मे आज भी किराती बसे हुए हैं। किरान्ती प्रदेश अर्थात अरुण नदी के पूर्व से सिक्किम तक सम्पूर्ण नेपाल मे किराती फैले हुए हैं। ये सिक्किम और दार्जिलिंग मे भी बसे हुए हैं। लिम्बू लोग पश्चिम मे अरुण नदी से पूर्व मे सिंगालिया तक पर्वतीय प्रदेश मे बसे हुए हैं। इसके पश्चिम मे राय लोग नेपाल की घाटी तक फैले हुए हैं।

लिम्बू और राय गुरुंग और मागर की ही भांति बलिष्ठ साहसी वीर और कष्टसहिष्णु होते हैं। वरन् उनसे अधिक लड़ाकू और तेजमिजाज होते हैं नहीं तो जहां तक सैनिक गुणों का प्रश्न है ये एकसमान हैं।

अध्याय चौथा

गुरखा अथवा गोरखाली

जो लोग नेपाल के इतिहास को नहीं जानते वे नेपाल के सभी नेपालियों को गुरखा ही समझते हैं। अंग्रेज लेखकों ने भी यही भूल की और नेपाल के प्रत्येक रहनेवाले को उन्होंने गुरखा मान लिया। परन्तु वास्तव में यह सही नहीं है। वास्तव में गुरखा केवल खास या छत्री लिम्बू और राय मागर या गुरंग जाति के लोग हैं। इन्हीं वीर सैनिकों ने नेपाल की नींव डाली और उन्होंने संसार में नेपालियों के लिए सिर ऊंचा किया। गुरखा सैनिक के शौर्य वीरता और कष्टसहिष्णुता को कौन नहीं जानता। वह संसार की अत्यंत प्रसिद्ध जाति है। गुरखा सैनिकों का रण कौशल और वीरता जगत प्रसिद्ध है। योरोप की रणभूमि पर मलाया के जंगलों में प्रथम और द्वितीय महायुद्ध में जिन सेनापतियों ने गुरखा सैनिकों को लड़ते देखा है उन्होंने उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। यही कारण है कि ब्रिटेन बहुत बड़ी संख्या में गुरखा सैनिकों को अपनी सेना में भरती करता है। अब हम इन वीर गुरखाओं के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

गुरखा जाति के पूर्वज गोरखा गांव और उसके समीपवर्ती प्रदेश से निकले इस कारण गुरखा या गोरखाली कहलाए। जिस पहाड़ी पर गोरखा गांव बसा है उसमें एक गुफा आज भी विद्यमान है उसी गुफा में संत गोरखनाथ जी रहते थे। उन्हीं से उस गांव का नाम गोरखा पड़ गया। गोरखा जाति के सम्बन्ध में लोग अधिक नहीं जानते। गोरखा जाति में भारतीय राजपूतों का रुधिर बहुत अधिक मात्रा में मौजूद है। इसी कारण यह जाति सैनिकों की जाति बन गई।

जब तेरहवीं शताब्दी में राजस्थान के राज्यों पर देहली के सुल्तानों ने आक्रमण करना आरम्भ किया और एक के बाद दूसरा राज्य मुसलमानों के आक्रमण के सामने गिरता गया तो कुछ राजपूत सेनापति नेपाल के पश्चिमीय पर्वतीय भाग में बस आए। विशेषकर जब राजपूतों के प्रसिद्ध गढ़ चित्तौरगढ़ और रणथम्भोर का पतन हुआ तब बहुत से वीर राजपूत नेपाल में आकर बस गए। उस समय सीसोदिया राठौर चंदेल बुन्देला और दक्षिण के राष्ट्रकूट राजपूत आकर पश्चिमी नेपाल में बसे। ये हिमालय के इस प्रदेश में मुसलमानों से अपने धर्म संस्कृति की रक्षा करने और मुसलमानों की अधीनता को स्वीकार न करने के उद्देश्य से आए। उस समय चित्तौर राजवंश का एक परिवार पश्चिम नेपाल में रिरी पहुँचा और वहां से पाल्पा मागर प्रदेश में पहुँचा। इस परिवार का नेपाल में आकर बसने का इतिहास इस प्रकार है—

गोरखा राजवंश के उदय के सम्बन्ध में नेपाल में नीचे लिखे हुए दो विवरण मिलते हैं। एक मान्यता है कि गोरखा राजवंश चित्तौर के भूपति राणाजी राव से निकला है। भूपति राणाजी राव के पुत्र फत्ता राणा ने सम्राट अकबर की पुत्री पत्नी के रूप में देना अस्वीकार कर दिया। युद्ध हुआ और फत्ता राणा रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। चित्तौर का पतन हो गया। किन्तु फत्ता के दो उत्तराधिकारी उदयपुर से जिहाद चलाया और मनमथ उज्जैन से मुगल सम्राट को चुनौती देते रहे। मनमथ का पुत्र तथा प्रपौत्र भूपाल रानाजी १४९५ में आसपास गृह कलह के कारण नेपाल की ओर रिरी पहुँचे और भिरकोट तथा समीपवर्ती प्रदेश में एक छोटा राज्य स्थापित किया।

दूसरा मत यह है कि गोरखा वंश के पूर्वज चित्तौर से उस समय भागे जब अलाउद्दीन खिल्जी ने चित्तौर पर आक्रमण किया। गुरखा वंशावली और रायबहादुर डाक्टर गौरीशंकर ओझा इसी मत के हैं। कर्नल टाड का मत है कि गोरखा राजवंश समरसिंह राणा से निकला है। जो भी हो सभी इस बारे में एकमत हैं कि गोरखा राजवंश का चित्तौर राजवंश से उद्भव हुआ है। अधिक प्रामाणिक यह प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चित्तौर राजवंश की कोई शाखा चित्तौर से विभिन्न स्थानों पर भटकती हुई हिमालय के इस पर्वतीय प्रदेश में आई और उससे गोरखा राजवंश का उद्भव हुआ।

भूपति राणा के पुत्र फत्ता राणा के चित्तौर में मारे जाने पर जब चित्तौर का पतन हो गया तो फत्ता राणा का पुत्र मनमथ राणाजी राव चित्तौर से भाग कर उज्जैन पहुँचा। उसके दो पुत्र थे। दुर्भाग्य से उनमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ। बड़ा भाई तो उज्जैन में जम गया और छोटा भाई अपने भाग्य की परीक्षा करने उज्जैन छोड़कर चल दिया। वह उत्तर पूर्व में हिमालय की ओर बढ़ता चला गया। महीनों तक लगातार यात्रा करने के उपरान्त वह हिमालय के पर्वतीय सकरे मार्गों से होता हुआ दुर्गम पहाड़ों और सघन वनों को पार करता हुआ पाल्पा प्रदेश के रिरी गांव पहुँचा जो कि मागर प्रदेश था और जहाँ के निवासियों ने यवन नेता मुहम्मद के नेतृत्व में दो सौ वर्ष पूर्व नेपाल की घाटी पर आक्रमण किया था। वास्तव यह थी कि मागर प्रदेश और उत्तर भारत के मैदानों के बीच में जो पहाड़ी प्रदेश था उसमें खस जाति बसी हुई थी जो कट्टर हिन्दू थे और अपने को राजपूत कहते थे।

अस्तु चित्तौर राजवंश के साहसी राजकुमार का इस प्रदेश में बहुत स्वागत हुआ। सभी जातियों के मुखियों ने उसका स्वागत किया। उसने भिरकोट (गुरुङ प्रदेश की सीमा पर) में एक मकान बनाया और भूमि खरीद कर वह एक किसान का जीवन व्यतीत करने लगा। उच्च वंश का क्षत्रिय होने के कारण लोग उसको अपना नेता मानने लगे। यहाँ उसके खांचा और मिचा दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे उस प्रदेश में नेता के रूप में स्वीकार किये गये और उनके वंश की उपाधि राणा प्रचलित और प्रतिष्ठित हो गई। वे चित्तौरा राणा कहलाने लगे। उस समय जो लोग चित्तौर राजवंश के राजकुमार के साथ इस पहाड़ी प्रदेश में आये उनमें से अधिकतर राजपूत और ब्राह्मण थे। उनके सम्पर्क से खास मागर और गुरुङ जातियों में बहुत अधिक राजपूत रुधिर प्रविष्ट हो गया और ब्राह्मणों ने उन्हें क्षत्रिय वर्ण में अभिषिक्त कर दिया।

अध्याय चौथा

गुरखा अथवा गोरखाली

जो लोग नेपाल के इतिहास को नहीं जानते वे नेपाल के सभी नेपालियों को गुरखा ही समझते हैं। अंग्रेज लेखकों ने भी यही भूल की और नेपाल के प्रत्येक रहनेवाले को उन्होंने गुरखा मान लिया। परन्तु वास्तव में यह सही नहीं है। वास्तव में गुरखा केवल खास या छत्री लिम्बू और राय मागर या गुरंग जाति के लोग हैं। इन्हीं वीर सैनिकों ने नेपाल को रौंद डाला और उन्होंने संसार में नेपालियों के लिए सिर ऊंचा किया। गुरखा सैनिक के शौर्य वीरता और कष्टसहिष्णुता को कौन नहीं जानता। यह संसार की अत्यन्त प्रसिद्ध जाति है। गुरखा सैनिकों का रणकौशल और वीरता जगत प्रसिद्ध है। योरोप की रणभूमि पर मलाया के जंगलों में प्रथम और द्वितीय महायुद्धों में जिन सेनापतियों ने गुरखा सैनिकों को लड़ते देखा है उन्होंने उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। यही कारण है कि ब्रिटेन बहुत बड़ी संख्या में गुरखा सैनिकों को अपनी सेना में भरती करता है। अब हम इन वीर गुरखाओं के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

गुरखा जाति के पूर्वज गोरखा गांव और उसके समीपवर्ती प्रदेश से निकले इस कारण गुरखा या गोरखाली कहलाए। जिस पहाड़ी पर गोरखा गांव बसा है उसमें एक गुफा आज भी विद्यमान है उसी गुफा में संत गोरखनाथ जी रहते थे। उन्हीं से उस गांव का नाम गोरखा पड़ गया। गोरखा जाति के सम्बन्ध में लोग अधिक नहीं जानते। गोरखा जाति में भारतीय राजपूतों का रुधिर बहुत अधिक मात्रा में मौजूद है। इसी कारण यह जाति सैनिकों की जाति बन गई।

जब तेरहवीं शताब्दी में राजस्थान के राज्यों पर देहली के सुल्तानों ने आक्रमण करना आरम्भ किया और एक के बाद दूसरा राज्य मुसलमानों के आक्रमण के सामने गिरता गया तो कुछ राजपूत सेनापति नेपाल के पश्चिमीय पर्वतीय भाग में घुस आए। विशेषकर जब राजपूतों के प्रसिद्ध गढ़ चित्तौरगढ़ और रणथम्भोर का पतन हुआ तब बहुत से वीर राजपूत नेपाल में आकर बस गए। उस समय सीसोदिया राठौर चंदेल बुन्देला और दक्षिण के राष्ट्रकूट राजपूत आकर पश्चिमी नेपाल में बसे। वे हिमालय के इस प्रदेश में मुसलमानों से अपने धर्म संस्कृति की रक्षा करने और मुसलमानों की अधीनता को स्वीकार न करने के उद्देश्य से आए। उस समय चित्तौर राजस्थान का एक परिवार पश्चिम नेपाल में रिडी पहुँचा और वहां से पाल्पा मागर प्रदेश में पहुँचा। इस परिवार का नेपाल में आकर बसने का इतिहास इस प्रकार है—

गोरखा राजवंश के उदय के सम्बन्ध में नेपाल में नीचे लिखे हुए दो
विवरण मिलते हैं। एक मान्यता है कि गोरखा राजवंश चित्तौर के भूपति
राणाजी राय से निकला है। भूपति राणाजी राय के पुत्र फत्ता राणा ने सम्राट
अकबर को पुत्री पत्नी के रूप में देना अस्वीकार कर दिया। युद्ध हुआ और
फत्ता राणा रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। चित्तौर का पतन हो गया।
किन्तु फत्ता के दो उत्तराधिकारी उदयपुर में जिन्हें उन्होंने बसाया और मन्मथ
उज्जैन से मुगल सम्राट को चुनौती देते रहे। मन्मथ का पुत्र तथा प्रपौत्र
भूपाल रानाजी १४९५ के आसपास गृह कलह के कारण नेपाल की ओर
रिरी पहुँचे और भिरकोट तथा समीपवर्ती प्रदेश में एक छोटा राज्य स्थापित
किया।

दूसरा मत यह है कि गोरखा वंश के पूर्वज चित्तौर से उस समय
भागे जब अलाउद्दीन खिल्जी ने चित्तौर पर आक्रमण किया। गोरखा वंशावली
और रायबहादुर डाक्टर गौरीशंकर ओझा इसी मत के हैं।

कर्नल टाड का मत है कि गोरखा राजवंश समरसिंह राणा से
निकला है। जो भी हो सभी इस बारे में एकमत हैं कि गोरखा राजवंश का
चित्तौर राजवंश से उद्भव हुआ है। अधिक प्रामाणिक यह प्रतीत होता है कि
अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चित्तौर राजवंश की कोई शाखा
चित्तौर से विभिन्न स्थानों पर भटकती हुई हिमालय के इस पर्वतीय प्रदेश में
आई और उससे गोरखा राजवंश का उद्भव हुआ।

भूपति राणा के पुत्र फत्ता राणा के चित्तौर में मारे जाने पर जब
चित्तौर का पतन हो गया तो फत्ता राणा का पुत्र मन्मथ राणाजी राय चित्तौर
से भाग कर उज्जैन पहुँचा। उसके दो पुत्र थे। दुर्भाग्य से उनमें झगड़ा उठ खड़ा
हुआ। बड़ा भाई तो उज्जैन में जम गया और छोटा भाई अपना भाग्य की
परीक्षा करने उज्जैन छोड़कर चल दिया। वह उत्तर पथ में हिमालय की ओर
बढ़ता चला गया। महीनों तक लगातार यात्रा करने के उपरान्त वह हिमालय
के पर्वतीय सकरे मार्गों से होता हुआ दुर्गम पहाड़ों और सघन वनों को पार
करता हुआ पाल्पा प्रदेश के रिरी गांव पहुँचा जो कि मागर प्रदेश था
और जहां के निवासियों ने अपने नेता मुकुन्दसेन के नेतृत्व में दो सौ वर्ष पूर्व
नेपाल की घाटी पर आक्रमण किया था। बात यह थी कि मागर प्रदेश और
उत्तर भारत के मैदानों के बीच में जो पहाड़ी प्रदेश था उसमें खस जाति बसी
हुई थी जो कट्टर हिन्दू थे और अपने को राजपूत कहते थे।

अस्तु चित्तौर राजवंश के साहसी राजकुमार का इस प्रदेश में बहुत
स्वागत हुआ। सभी जातियों के मुखियों ने उसका स्वागत किया। उसने भिर
कोट (गुरुंग प्रदेश की सीमा पर) में एक मकान बनाया और भूमि खरीद
कर वह एक किसान का जीवन व्यतीत करने लगा। उच्च वंश का क्षत्रिय
होने के कारण लोग उसको अपना नेता मानने लगे। वहां उसके खांचा और
मिचा दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे उस प्रदेश में नेता के रूप में स्वीकार किये गये
और उनके वंश की उपाधि राणा प्रचलित और प्रतिष्ठित हो गई। वे चित्तौरा
राणा कहलाने लगे। उस समय जो लोग चित्तौर राजवंश के राजकुमार के
साथ इस पहाड़ी प्रदेश में आये उनमें से अधिकतर राजपूत और ब्राह्मण थे।
उनके संसर्ग से खास मागर और गुरुंग जातियों में बहुत अधिक राजपूत रुधिर
प्रविष्ट हो गया और ब्राह्मणों ने उन्हें क्षत्रिय वर्ण में अभिषिक्त कर दिया।

सभी से यह और जातियां अपने को क्षत्रिय मानने लगीं और उन्होंने हिन्दू रीति रिवाजों को अपना लिया।

तरुण राणा पुत्र 'खांचा और मिचा' क्रमश: अपने प्रदेश के छोटे शासक बन बैठे। पिता ने खांचा को धरिकोट का मकान और भूमि दी थी। और मिचा के लिए वह नवकोट के पास दूसरी भूमि छोड़ गया। इन दोनों चित्तौर राजवंश के राजपूत राजकुमारों से नेपाल में गोरखों का प्रभुत्व स्थापित होना आरम्भ होता है।

खांचा ने अपने जीवनकाल में अपनी जागीर को बढ़ाकर समस्त मागर प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। गुल्मी, धोर' और 'पान-दुर्ग' का मागर प्रदेश का वह स्वामी बन गया। मिचा ने नवकोट से आगे बढ़कर समस्त गुरंग प्रदेश (कास्की लमजुंग तथा तनाहुंग) पर अधिकार जमा लिया।

कालान्तर में मिचा के उत्तराधिकारी लामजंग कास्की तथा तनाहुंग में स्वतंत्र शासक बन गये। लामजंग अधिक शक्तिशाली था इस कारण और दोनों उसकी सत्ता को स्वीकार करते थे। लामजुंग के ठाकुर राजा हसो बाद के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र को लामजंग की गद्दी मिली छोटा भाई द्रव्य शाह' जो अपने भाई का प्रधान मंत्री था उसने अपना स्वयं का राज्य निर्माण करने का निश्चय किया और निकल पड़ा। लामजुंग से दस मील दूर एक पहाड़ी पर जो कि एक अर्द्धगोलाकार पर्वतमाला की निचली श्रेणी में थी और जो एक कृषि से लहलहाते मैदान को घेरे हुई थी गोरखा गांव स्थित था। उसका राजा खास जाति का था। द्रव्यशाह ने उस पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में राजा द्रव्यशाह के हाथ से मारा गया और द्रव्यशाह वहां का राजा बना। तब से द्रव्यशाह के उत्तराधिकारी गोरखा के राजा बने और गोरखा राजवंश का आरंभ हुआ।

गोरखा राजा पृथ्वीनारायन

यह हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि सन् १५५९ में, द्रव्यशाह ने गोरखा को विजय किया था। उसकी नवीं पीढ़ी में नरभूपालशाह गोरखा का राजा हुआ। काठमांडू और भटगांव के राजाओं के आपसी कलह से लाभ उठाकर उसने नवकोट पर अधिकार कर लिया और नेपाल की घाटी पर आक्रमण कर दिया परन्तु वह असफल रहा। सन् १७४२ में नरभूपालशाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र पृथ्वीनारायनशाह बारह वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा।

पृथ्वीनारायन का जन्म जनवरी १७२३ ईसवी में हुआ था। वह सात महीने का पैदा हुआ था और उसकी एक सौतेली मां से एक भाई और उत्पन्न हुआ। अतएव यह विवाद का प्रश्न बन गया कि राज्य का उत्तराधिकारी कौन हो। बात यह थी कि जब वह सात महीने का था तो उसका भाई मां के गर्भ में था। परन्तु वह शैशव अवस्था में ही मर गया इस कारण उत्तराधिकार का प्रश्न स्वतः ही हल हो गया। उसकी माता का नाम कौशल्या देवी था जो पाल्पा के राजा की पुत्री थी। पृथ्वीनारायन के पिता नरभूपाल के चार रानियां थीं।

पृथ्वीनारायन की शिक्षा-दीक्षा में उसकी संरक्षक माता (उसकी माता नहीं) प्रभावती का बहुत बड़ा हाथ था। प्रभावती की देखभाल में ही पृथ्वीनारायन में एक महान् विजेता और सफल प्रशासक के गुण विकसित हुए थे।

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि पृथ्वीनारायन के पिता नरभूपाल ने जब नेपाल घाटी को विजय किया तो वह बुरी तरह परास्त हुआ और पराजय से उसका मस्तिष्क विकृत हो गया। उस दशा में पांच वर्ष तक प्रभावती राज्य की प्रशासिका (रिजेंट) रही। प्रभावती ने केवल पृथ्वीनारायन को शिक्षा-दीक्षा ही नहीं दी वरन उसने उसमें महत्वाकांक्षा भी भर दी। यह उसी की दूरदर्शिता थी कि भटगांव के राजा ने पृथ्वीनारायन को मित्र के रूप में अपने यहां आमन्त्रित किया तो उसने उसे भटगांव में जाकर रहने के लिए प्रोत्साहित किया। पृथ्वीनारायन जब भटगांव में तीन वर्ष रहा तो उसे नेपाल घाटी की दयनीय दशा का पता चल गया। नेपाल घाटी के तीनों राजवंश एक दूसरे से कितनी गहरी घृणा करते हैं वहां किस प्रकार के षड्यन्त्र चल रहे हैं और नेपाल की घाटी के राजा कितने निर्बल हैं यह उससे छिपा नहीं रहा। १७३९ में वह अपनी माता प्रभावती के साथ राज्य का सह प्रशासक बनाया गया और अपनी मां की देखरेख में नरभूपालशाह की मृत्यु पर वह गद्दी

पर बैठा । पृथ्वीनारायन का राज्याभिषेक रामनवमी के शुभ दिन हुआ था ।

जिस समय पृथ्वीनारायन गोरखा सिंहासन पर बैठा उस समय नेपाल की राजनैतिक स्थिति आगे लिखे अनुसार थी । नेपाल की घाटी में काठमांडू पाटन और भटगांव के राज्य थे । गोरखा राज्य जिसका अधीश्वर स्वयं पृथ्वीनारायन था पश्चिम में चौबीसी और बाईसी के राज्य थे जो सबों में बंटे हुए थे । पूर्व में किरान्ती राज्य थे ।

उस समय नेपाल की राजनीतिक दशा अत्यन्त दयनीय थी । उस पर्वतीय देश में कोई ऐसा शक्ति न थी जो समूचे देश को एक सूत्र में बांध सकती । अनेक छोटे मोटे राजा अपने राज्यों को व्यक्तिगत अथवा जागीर की भांति बरतते थे । कुशासन कुशासन भ्रष्टाचार षड्यंत्र तथा प्रजा का शोषण शोषण यही नेपाल की कहानी थी । पृथ्वीनारायन की संरक्षक माता प्रभावती देवी ने इस तथ्य को समझ लिया था । उसने बालक राजा को समझाया कि नेपाल की दशा ऐसी है कि यदि कोई प्रबल और प्रभावशाली शक्ति उत्पन्न नहीं हुई और उसने समूचे देश को एक सूत्र में बांध नहीं दिया तो नेपाल की स्वतंत्रता नहीं बच सकती । कालान्तर में नेपाल पर भी अंग्रेजों का शासन स्थापित हो जायेगा । अतएव पृथ्वीनारायन को समस्त नेपाल को एक करके तथा शक्तिवान राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए । पृथ्वीनारायन के मस्तिष्क में समस्त नेपाल को एक सूत्र में बांधने का महान् लक्ष्य चक्कर काटने लगा और वह उस लक्ष्य को प्राप्त करने की तैयारियां करने लगा ।

प्रभावती ने पृथ्वीनारायन का विवाह मकवानपुर के राजा हेमकरण की पुत्री से किया । प्रभावती का इस विवाह को स्वीकार करना राजनैतिक उद्देश्य से खाली नहीं था । बात यह थी कि नेपाल घाटी में प्रवेश करने के लिए केवल दो ही मुख्य द्वार थे । पश्चिम में नवकोट और दक्षिण में मकवानपुर । यद्यपि मकवानपुर की राजकुमारी अतीव सुन्दरी थी परन्तु प्रभावती का पृथ्वीनारायन का उससे विवाह करने का मुख्य उद्देश्य उसका सौंदर्य न होकर मकवानपुर का नेपाल घाटी की विजय करने में सहयोग प्राप्त करना था । इस विवाह में दोनों राजवंशों में अनबन हो गई । कारण यह था कि विवाह के उपरान्त वधू के अपने पिता के गृह में कुछ समय तक और रहने की परम्परा थी । गोरखा लोग इस परम्परा को तोड़ देना चाहते थे । गोरखा वंशावली के अनुसार अनबन इस बात पर हुई कि विवाह के समय राजकुमारी नौलखा हार पहने थी उसे और एकदंते नामक हाथी को मकवानपुर के राजा ने पृथ्वीनारायन को देना अस्वीकार कर दिया । जो भी हो दोनों दलों में अनबन हो गई और पृथ्वीनारायन को बिना वधू के लौटना पड़ा ।

गोरखा के राजसिंहासन पर बैठने के उपरान्त पृथ्वीनारायनशाह ने अपने राज्य विस्तार की योजना तैयार की और नेपाल घाटी को विजय करने का निश्चय किया । नेपाल घाटी को विजय करने का संकल्प उस परिस्थिति को देखते हुए पागलपन था । पृथ्वीनारायनशाह के पिता को उस प्रयत्न में भयंकर असफलता का सामना करना पड़ा था । परन्तु पृथ्वीनारायनशाह कठिनाइयों से घबरानेवाला व्यक्ति नहीं था । उसने गद्दी पर बैठते ही

विजय अभियान की तैयारियाँ प्रारम्भ करदीं । इधर सैनिक तैयारियाँ हो रही थीं उधर पृथ्वीनारायणशाह ने पुण्यभूमि वाराणसी (काशी) की तीर्थ यात्रा की । वह अपनी सफलता के लिए भगवान विश्वनाथ के दर्शन करने के लिए गया । रास्ते में उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी की सैनिक छावनियों को देखा और अंग्रेजों के सैनिक संगठन का अध्ययन किया । ऐसा अनुमान है कि उसने अपने युद्धों में जिन बंदूकों का उपयोग किया था उनको कानपुर और लखनऊ के बन्दूकचियों ने बनाया था ।

बनारस राज्य की सीमा पर उसका चुंगी अधिकारियों से झगड़ा हो गया और क्रोध में आकर उसने अपने खोंग (अस्त्र) से एक चुंगी अधिकारी की हत्या करदी । वह पकड़ा जाता परन्तु एक बैरागी ने साधू का वेश धारण करा उसे अपने दल में छिपा लिया और वह अवध होता हुआ नेपाल पहुँचा दिया । कुछ वर्षों के उपरान्त जब पृथ्वीनारायणशाह एक समृद्धिशाली शासक बन गया तो वह बैरागी साधु बहुत बड़ी संख्या में लड़ाके साधुओं की सेना लेकर आया और पृथ्वीनारायण से उसने धन की माँग की अन्यथा उत्पात करने की धमकी दी । पृथ्वीनारायण ने उनमें कुछ को तो मरवा दिया और कुछ को जेल में डाल दिया ।

पृथ्वीनारायण का मुख्य अमात्य (मंत्री) अभिराम कुंवर एक खास जाति का गोरखा था । वह अत्यन्त साहसी वीर और चतुर था । उसी से राणा वंश का उदय हुआ जिसने सौ वर्ष तक नेपाल पर शासन किया । गोरखा राज्य आर्थिक दृष्टि से अधिक समृद्धिशाली नहीं था । बात यह थी कि उसका भारत और तिब्बत से कोई सम्पर्क नहीं हो सकता था उनके तथा गोरखा राज्य के बीच में अन्य राज्य थे । अतएव गोरखा राज्य व्यापारिक मार्ग पर न होने के कारण आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं था । परन्तु गोरखा राज्य में वीर गोरखा रहते थे । पृथ्वीनारायण ने उनकी वीरता और साहस से गोरखा राज्य को एक विशाल राज्य बनाने का संकल्प किया । नेपाल की घाटी के तीनों राज्यों में जो आपसी फूट ईर्ष्या थी पृथ्वीनारायण उससे परिचित था । काठमांडू के शासक जयप्रकाश से उसकी प्रजा अप्रसन्न थी और भक्तगांव तथा पाटन के राजा उससे घृणा करते थे । उससे लाभ उठाने तथा काठमांडू को विजय करने के उद्देश्य से पृथ्वीनारायण ने काठमांडू के कुछ लोगों को लालच देकर अपने पक्ष में कर लिया और काठमांडू में एक प्रभावशाली पक्षपाती दल खड़ा कर दिया जो राज्य में विघटन का प्रयास करता था । काठमांडू के राजा जयप्रकाश से नेपाल घाटी के सभी लोग अप्रसन्न थे । स्वयं उसके दरबारी उससे बहुत ही अप्रसन्न थे । उसके भाई पाटन और भक्तगांव के शासक भी उससे घृणा करते थे । कारण यह था कि वह क्रूर और सनकी था ।

जयप्रकाश कभी कभी दरबार में प्रमुख दरबारियों का अपमान कर देता था उससे नाराज होकर दरबारियों ने उसके भाई राज्यप्रकाश का समर्थन किया और काठमांडू राज्य में धोखे से प्रवेश कर उसे राजा घोषित कर दिया । परन्तु जयप्रकाश ने आक्रमण कर दिया राज्यप्रकाश को राज्य छोड़कर भागना पड़ा । परन्तु जयप्रकाश के विरुद्ध षड्यन्त्र समाप्त नहीं हुए । दरबारियों ने उसकी रानी दयावती से मिलकर षड्यन्त्र किया और विद्रोह कर दिया ।

मन्त्री ने रानी दयावती के पुत्र को राजा घोषित कर दिया । एक दो वर्ष इधर उधर भटकने के उपरान्त जयप्रकाश ने षडयन्त्र के द्वारा पुनः राजसिंहासन प्राप्त कर लिया । रानी दयावती समझ गई कि अब उसकी स्थिति दयनीय ही होगी । उसने उस मन्त्री को जिसने उसके पुत्र को राज्यसिंहासन पर बिठाया था फांसी दिलवादी । परन्तु उससे भी उसकी रक्षा नहीं हो सकी । जयप्रकाश ने उसको एक अंधेरी कोठरी में डलवा दिया और उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई ।

नवकोट में काशीराम थापा एक प्रसिद्ध सामन्त था । उसके वंश की बहुत प्रतिष्ठा थी और लोग उसको आदर और श्रद्धा के साथ देखते थे । जयप्रकाश को उस पर यह सन्देह था कि वह पृथ्वीनारायण से मिला हुआ है । काशीराम थापा उन थापाओं का पूर्वज था जिन्होंने बाद को एक सौ वर्ष तक सम्पूर्ण नेपाल पर निरंकुश शासन किया । नवकोट का सामन्त नाममात्र को काठमांडू के अधीन था । वास्तव में वह अर्द्ध स्वतन्त्र था और काठमांडू तथा गोरखा दोनों से ही स्वतन्त्र रहना चाहता था । १७४३ में जयप्रकाश ने काशीराम थापा को अपने दरबार में आमन्त्रित किया और उसको गोरखा राजा से मिले रहने के अपराध में धोखे से मरवा डाला । इससे नवकोट में बहुत असंतोष फैल गया और नवकोट जयप्रकाश के विरुद्ध हो गया ।

जयप्रकाश का एक भाई पाटन का राजा था । वहां के प्रधानों (नेवार सामन्तों) ने उसके विरुद्ध षडयन्त्र करके उसको अंधा कर दिया । अतएव जयप्रकाश ने उन्हें बुलाकर पकड़ लिया किन्तु उसने उन्हें फांसी न देकर लांछित और अपमानित किया तथा छोड़ दिया । उन ६ प्रधानों और उनकी पत्नियों को सारे शहर में फिराया गया और अपमानित करके छोड़ दिया गया । वे जयप्रकाश के विरुद्ध षडयन्त्र करने लगे ।

भटगांव के राजा रणजीतमल्ल से भी जयप्रकाश का मनमुटाव हो गया था क्योंकि भटगांव के राजा ने काठमांडू के कुछ व्यक्तियों को कैद कर लिया था । उसका बदला लेने के लिये जयप्रकाश ने भटगांव के कुछ व्यक्तियों को जो भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन करने आए थे कैद कर लिया और धन लेकर ही छोड़ा ।

जबकि जयप्रकाश पृथ्वीनारायण से युद्ध कर रहा था तो उसे अपनी सेना पर विश्वास नहीं था । अतएव उनको हटाकर उसने तराई तथा गोरखपुर के क्षेत्र से बाहरी भाड़े के सिपाहियों को सेना में रक्खा उससे वहां के सैनिक और जनता रुष्ट हो गई । व्यय बहुत अधिक बढ़ जाने से और युद्ध के कारण खजाना खाली हो जाने से जब उसको युद्ध के लिये धन की आवश्यकता पड़ी तो उसने मन्दिरों से सोना-चांदी और धन लिया । उसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण तथा धार्मिक व्यक्ति उसके विरुद्ध हो गये ।

पाटन की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त हीन थी । विद्रोही प्रधान एक राजा को गद्दी से उतार कर दूसरे को गद्दी पर बिठाते थे । अन्त में उन्होंने पृथ्वीनारायण को पाटन के सिंहासन पर बठने के लिये आमन्त्रित किया । चतुर और बुद्धिमान पृथ्वीनारायण ने स्वयं राजा बनना अस्वीकार कर दिया और अपने स्थान पर अपने भाई दलमर्दनशाह को भेजा । पाटन के प्रधानों ने पृथ्वीनारायण को बुलाने में अपनी भूल को समझ लिया । अतः उन्होंने दलमर्दन शाह को पाटन के राजसिंहासन पर बिठाकर पृथ्वीनारायण के विरुद्ध युद्ध की

घोषणा करदी। चार वर्ष के उपरान्त १७६५ में उन्होंने दलमदनशाह को भी सिंहासन से हटाकर एक नाममात्र के राजा को सिंहासन पर बिठाया। इससे पाटन बहुत कमजोर हो गया था और अपनी रक्षा करने में असमर्थ था।

उधर ललितपुर और काठमांडू में पुराना बैर था। काठमांडू को नीचा दिखाने के लिये उसने १७४९ में पृथ्वीनारायण को नेपाल घाटी पर आक्रमण कर काठमांडू राज्य को परास्त करने के लिये आमन्त्रित किया। इस प्रकार भटगांव ने भी अपनी कब्र खोदली। नेपाल की घाटी के तीनों राज्य एक दूसरे से शत्रुता रखते थे अतएव पृथ्वीनारायण के विरुद्ध वे संगठित नहीं हो सकते थे। जयप्रकाश के विरुद्ध स्वयं उसके दरबारी और जनता थी। पाटन की स्थिति खराब थी। इससे अच्छा अवसर पृथ्वीनारायण के लिये नेपाल की घाटी पर आक्रमण करने का और क्या हो सकता था। पृथ्वीनारायण के मन में समस्त नेपाल पर अपना राज्य स्थापित करने तथा अपने पिता की पराजय का बदला लेने की तीव्र महत्वाकांक्षा थी और वह उसकी दृढ़ता से तैयारी कर रहा था।

पृथ्वीनारायण ने केवल राजकीय स्तर पर ही नेपाल की पश्चिमी और समस्त नेपाल विजय करने की तैयारियाँ नहीं की। समस्त गोरखा राज्य की प्रजा भी इस महाभियान में उसके साथ सहयोग कर रही थी। पृथ्वीनारायणशाह ने अपनी प्रजा में ऐसा उत्साह भर दिया कि प्रत्येक तरुण स्वेच्छा से उसकी सेना में भरती होने लगे। ब्राह्मण क्षत्रिय ठाकुरी खास नेवार वन्य किसान गुरंग और मगर सभी सेना में भरती किये गये। यहां तक कि दर्जी लुहार चमार महतर आदि नीचे वाले सभी को इस महाभियान में सम्मिलित किया गया। इसके उपरान्त पृथ्वीनारायणशाह ने धन एकत्रित किया। उसने प्रत्येक गोरखा राज्यवासी से युद्ध के लिए धन देने की अपील की। इसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग शरीर से निर्बल थे युद्ध के लिये नहीं जा सकते थे उन्होंने नकद सोना चांदी हीरे जेवर दिए। जो गरीब थे उन्होंने अनाज फल और सब्जियां दीं। चूंकि युद्ध चल रहा था तो जो घायल हो जाते थे उनकी सेवा सुश्रूषा की व्यवस्था लोगों ने स्वेच्छा सेवा के आधार पर की। सारांश में समस्त गोरखा राज्य की प्रजा इस युद्ध में उतर पड़ी। पृथ्वीनारायण ने इस तैयारी के अतिरिक्त कालूपाण्डे जैसे वीर साहसी और राजनीतिज्ञ को अपना मुख्य मन्त्री बनाया। उधर पृथ्वीनारायणशाह ने यह प्रबन्ध भी कर दिया कि यदि वह इस लम्बे युद्ध में काम आ जाता है तो गोरखा राज्य की रक्षा की जाय। उसने अपने वृद्ध भरोसे के सेनापतियों तथा कर्मचारियों को इसके लिए पीछे छोड़ दिया।

सब तैयारी कर चुकने के बाद उसने नवाकोट को विजय करने का निश्चय किया।

जिस वर्ष पृथ्वीनारायण गद्दी पर बैठा उसी वर्ष १७४२ में एक दिन उसने काठमांडू के राजा जयप्रकाश को सूचना दी कि गोरखा राजा के सिपाही नवकोट के बाजार में घूमते रहते हैं। जयप्रकाश ने तुरन्त ही एक सेना भेजी जिसने पृथ्वीनारायण के सिपाहियों को नवकोट से हटा दिया। बात यह थी कि पृथ्वीनारायण ने थोड़े से ही सैनिक नवकोट भेजे थे।

दूसरे वर्ष गोरखा राजा ने पुनः अपने सैनिक नवकोट की ओर

भेजे। पृथ्वीनारायन को अपने मित्र कालीराम थापा से आशा थी कि वह उसे गढ़ की चाबियाँ सौंप देगा परन्तु उससे पूर्व ही जयप्रकाश ने कालीराम थापा को बुलाकर धोखे से मार डाला। परन्तु काठमांडू के राजा ने पृथ्वीनारायन के विरुद्ध आक्रमण नहीं किया। अपने मित्र कालीराम थापा के मारे जाने से पृथ्वी नारायन बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने भीमवेग से नवकोट पर एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण किया। इस बार भयंकर युद्ध के पश्चात् उसने काठमांडू की सेना को परास्त कर नवकोट से हटा दिया और नेपाल की घाटी के प्रमुख द्वार नवकोट पर उसका अधिकार हो गया। कालीराम थापा की मृत्यु से नवकोट सदा के लिये गोरखा राज्य का एक भाग बन गया।

जब पृथ्वीनारायन के अधिकार में नवकोट आ गया तो उसने कीर्तीपुर की ओर दृष्टि उठाई। कीर्तीपुर नेपाल घाटी के दक्षिण पश्चिम कोन में मैदान से तीन सौ फीट की ऊंचाई पर एक महत्वपूर्ण नगर था। अब गोरखा सैनिक पहाड़ियों से पहली बार मैदान में लड़ने को उतरे।

पृथ्वीनारायन का प्रधान मंत्री और सेनापति कालूपांडे कीर्तीपुर के अजेय दुर्ग पर आक्रमण करने के विरुद्ध था। वह जानता था कि कीर्तीपुर को विजय करने के लिये पर्याप्त तैयारी नहीं है। परन्तु पृथ्वीनारायन कुछ सुनने को तैयार नहीं था। जब उस साहसी वीर ने कीर्तीपुर पर आक्रमण करने का घोर विरोध किया तो तरुण गोरखा पृथ्वीनारायन ने उसकी देशभक्ति और राजभक्ति पर संदेह किया और उसे धिक्कारा। कालूपांडे को अपने स्वामी की इस बात से बहुत ग्लानि और दुःख हुआ कि वह उसकी स्वामिभक्ति और देशभक्ति पर संदेह करते हैं। वह अपनी पत्नी के पास गया। उससे अंतिम विदा ली और अपने इकलौते पुत्र को पृथ्वीनारायन के पास ले गया। पृथ्वी नारायन से उसने कहा—स्वामी! मैं अब कीर्तीपुर पर आक्रमण करूंगा यदि मैं युद्ध में मारा जाऊं तो मेरे पुत्र की देखभाल करना और उसको अपनी सेवा में रखना।

सबसे विदा ले कालूपांडे सेना को ले चल पड़ा और कीर्तीपुर पर आक्रमण कर दिया। परन्तु कीर्तीपुर के लोग भी साहसी और वीर थे। उन्होंने डट कर मुकाबला किया। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से बहुत बड़ी संख्या में सैनिक रणभूमि में सो गए। कालूपांडे भी वीरगति को प्राप्त हो गया। कीर्तीपुरवालों ने कालूपांडे के हथियारों को बाघभैरव के मंदिर की दीवाल पर टांग कर उनका प्रदर्शन किया। ये हथियार आज तक उस मंदिर में मौजूद हैं। गोरखा सेना भाग खड़ी हुई। भागती हुई सेना का जयप्रकाश की सेना ने पीछा किया और गोरखा सेना को बहुत भारी हानि उठानी पड़ी। जयप्रकाश की भारतीय सेना ने शमशेर खान सरदार के सेनापतित्व में पृथ्वीनारायन की सेना को तितर बितर कर दिया। गोरखा सेना इसी हड़बड़ी में भागी कि पृथ्वीनारायन स्वयं अकेला पड़ गया उसके साथ एक भी सैनिक नहीं था। सौभाग्यवश रात्रि पड़ गई थी और शत्रु की उस पर नजर नहीं पड़ी परन्तु पृथ्वीनारायन इतना शिथिल और पस्त हो गया था कि वह दौड़ नहीं सकता था। एक नीच जाति के व्यक्ति ने उसको अपनी पीठ पर लादकर उसे वाहचौक पहुँचाया था। इस युद्ध में पृथ्वीनारायन की पराजय तो हुई ही उसके बहुत से वीर सेनापति मारे गये। शत्रु की भी भयंकर हानि हुई। जयप्रकाश की अधिकांश सेना धराशायी हो गई। पृथ्वीनारायन निराश और पराजित होकर

मय नवकोट लौट आया। यहाँ यह दो वर्ष तक भावी आक्रमण की तयारी करता रहा। उसने यह प्रण कर लिया था कि मैं नपाल की घाटी को बिना विजय किए वापस नहीं लौटूगा।

पृथ्वीनारायनशाह ने नपाल घाटी की आर्थिक नाकेबन्दी करदी थी। कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु को नपाल घाटी मे नहीं ल आ सकता था। आर्थिक नाकेबन्दी इतनी कठोर थी कि नपाल घाटी का व्यापार ठप्प हो गया और जो भी वस्तए नपाल घाटी से बाहर से आती थीं उनका अकाल पड गया। नपाल की घाटी मे जो सात दर्रे थे जिनसे होकर नपाल घाटी का नैप देश से सम्बन्ध था उन सबको पृथ्वीनारायन ने रोक दिया। पृथ्वीनारायन ने यह आर्थिक नाकेबंदी ऐसी कठोरतापूर्वक की थी कि यदि किसी व्यक्ति के पास थोडा-सा भी नमक और कपास मिल जाता तो उसको फांसी देकर पेड पर लटका दिया जाता था। यहाँ तक यदि किसी स्त्री या बच्चे को भी नमक कपास अथवा अन्य वस्त ल जाते पकड लिया जाता तो उसे भी कठोर दण्ड दिया जाता।

इसके अतिरिक्त उसने नपाल की घाटी के सामन्तों तथा ऊंचे अधिकारियों को भविष्य मे उन्हे ऊंचे पद और जागीरों का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इस काय क लिये उसने दो हजार ब्राह्मणों को अपना भेदिया बनाकर नपाल की घाटी मे रक्खा था। जो भी लोग जयप्रकाश से असतुष्ट थे उनको इन ब्राह्मण जासूसों क द्वारा पृथ्वीनारायन ने अपनी ओर मिला लिया। इसके अतिरिक्त वह अपनी सनिक तयारी तो कर ही रहा था।

इधर कीर्तीपुर जो कि पाटन राज्य का एक नगर था उसके प्रधानो ने यह देखकर कि पाटन राज्य न विपत्ति के समय उनकी कोई सहायता नहीं की और काठमांडु क राजा जयप्रकाश ने सहायता की एक प्रतिनिधिमडल जयप्रकाश के दरबार मे अपनी कृतज्ञता प्रकट करने और भविष्य में काठमांडु को अपना अधीश्वर स्वीकार करने क सम्बन्ध म प्रार्थना करने क लिए भेजा। उनको जयप्रकाश ने उस प्रतिनिधिमडल की घोर भर्त्सना की। कीर्तीपुर के कतिपय प्रधान व्यक्तियों को तो उसने मरवा डाला प्रतिनिधियों को कद कर लिया और उनक नेता दनवन्त तथा उसक सायियों को औरतों के कपडे पहनाकर काठमांडु की सडकों पर घुमाया। होना तो यह चाहिए था कि जयप्रकाश उनका आदर करता और उनका आभारी होता क्योंकि कीर्तीपुर के निवासियों की वीरता और साहस क कारण ही पृथ्वीनारायन की घोर पराजय हुई थी और घाटी तथा काठमांडु की रक्षा हुई थी।

इसी बीच म उसने मकवानपुर क पश्चिम प्रदेश क राजा विगवदन पर आक्रमण कर दिया और नपाल घाटी के दक्षिण पश्चिम के प्रदेश द्वार पर अपना अधिकार कर लिया। विगवदन का परिवार भाग कर पाल्पा के राजा की शरण म चला गया।

इस प्रकार पूरी तयारी करके गोरखा राजा ने दूसरी बार कीर्तीपुर पर आक्रमण किया। महीनों तक भयकर युद्ध हुआ। कीर्तीपुर क नेताओं म नपाल घाटी क तीनों राज्यों से सहायता की प्रार्थना की किन्तु कोई भी कीर्तीपुर की सहायता के लिए नहीं आया। परन्तु कीर्तीपुर क सनिकों ने पृथ्वीनारायन की सना को एक बार पुन परास्त कर दिया। इस युद्ध म पृथ्वीनारायन का भाई सरूपरतन बहुत अधिक घायल हो गया और उसकी एक

भाल नष्ट हो गई। विफल होकर गोरखा सेना फिर नवकोट लौट आई।

उस समय जबकि पृथ्वीनारायन नेपाल की घाटी में युद्ध कर रहा था उसका भाई रमाशाह का राजा गड़बड़ कर रहा था। अस्तु पृथ्वीनारायन ने सोचा कि अपने राज्य के पश्चिम के इस राज्य को परास्त करके ही पूर्व में नेपाल की घाटी को विजय करना चाहिए। पृथ्वीनारायन ने लमजुंग पर आक्रमण कर उसे परास्त कर संधि करने पर विवश किया जिससे कि वह निश्चिन्त होकर नेपाल की घाटी में बढ़ सके। इसके उपरान्त उसने मकवानपुर के राजा पर आक्रमण कर उसके राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। पृथ्वीनारायन ने मकवानपुर के राजा से तराई के मकवानी भाग को भी छीन लिया और उसके मुसलमान सामन्त अबदुल्ला को भगाकर उसके जागीर के बाईस गावों पर भी अधिकार कर लिया।

अपने राज्य के समीपवर्ती राज्यों को पराजित कर पृथ्वीनारायन पुनः नेपाल की घाटी की ओर लौटा और उसने नवकोट से फिर तीसरी बार कीर्तीपुर पर आक्रमण किया। कीर्तीपुर के बहादुरों ने फिर डटकर मुकाबला किया। महीनों तक घमासान युद्ध हुआ। गोरखा सेनाएं कीर्तीपुर के नगर में न घुस सकीं। गोरखा सेना का सेनापति पृथ्वीनारायन का भाई स्वरूप रत्न था और नवकोट के ऊंचे दरबार भवन से स्वयं पृथ्वीनारायन युद्ध का संचालन कर रहा था। जब यह युद्ध लम्बे समय तक चलता रहा तब कहीं भक्तपुर और पाटन के राजाओं को यह फुरसत हुई कि वे अपने आपसी मतभेद को दूर कर पृथ्वीनारायन का विरोध करने आते। परन्तु अब बहुत देर हो गई थी। काठमांडू के बहुत से सामन्त पृथ्वीनारायन से मिल गये थे। गोरखा सेना ने उनकी सहायता से नेपाल की घाटी की सेना को मार भगाया। परन्तु फिर भी कीर्तीपुर में गोरखा सेना नहीं घुस सकी। कीर्तीपुर के प्रमुख प्रधान दनुवन्त जिसका जयप्रकाश ने घोर अपमान किया था नगर से निकल आया और पृथ्वीनारायन से जा मिला। उसने धोखे से गोरखा सेना को कीर्तीपुर में प्रवेश करा दिया। गोरखा सेना चुपके से नगर में घुस आई और उसने नगर के सभी फाटकों पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु मुख्य गढ़ अभी भी पराजित नहीं हुआ था। पृथ्वीनारायन ने घोषणा की कि यदि नगरनिवासी हथियार डाल देंगे तो सभी को क्षमा कर दिया जायेगा। थक और निराश होकर नगरवासियों ने युद्ध समाप्त कर हथियार रख दिए। कीर्तीपुर विजय हो गया। पृथ्वीनारायन ने जो नवकोट में था अपने भाई स्वरूपरत्न को आज्ञा दी कि प्रमुख नागरिकों को मार दिया जाय और प्रत्येक स्त्री पुरुष और बच्चे की नाक और ओठ काट लिया जाय। केवल उन्हीं बच्चों को छोड़ा जाय जो गोद में हों। आज्ञा का पालन हुआ। सभी के नाक और होंठ काट दिए गए। यह दृश्य अत्यन्त करुण था। नाक और ओंठ तौले गए कई मन हुए। कीर्तीपुर का नाम नासकटीपुर रख दिया गया।

पृथ्वीनारायन ने सम्भवतः कीर्तीपुर में ऐसा अमानवीय व्यवहार इसलिये किया क्योंकि कीर्तीपुर में उसे कई बार अपमानजनक पराजय मिली थी। कालपांडे और उसके कई वीर सेनापति मारे गये थे। उसकी सेना का कल्पनातीत विनाश और ध्वंस हुआ था। इसके अतिरिक्त पृथ्वीनारायन इसके द्वारा नेपाल घाटी के नागरिकों में भय और आतंक बिठा

देना चाहता था जिससे कि वे उसका विरोध करने का साहस न करें ।

जब पृथ्वीनारायन की सेनाओं ने मकवानपुर को ले लिया और उसके मुस्लिम सामन्त के तराई के बाईस गाँव भी छीन लिए तो बंगाल का नवाब मीर कासिम और ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी चौकन्नी हो गई । अभी तक तो बंगाल के नवाब और ईस्ट इण्डिया कम्पनी यही समझते थे कि गोरखा राजा अपने प्रदेश के पहाड़ी राजाओं से लड़ रहा है परन्तु मकवानपुर की विजय ने उन्हें विश्वास दिला दिया कि वह सम्पूर्ण हिमालय को विजय करना चाहता है ।

मकवानपुर के राजा ने मीर कासिम से सहायता की प्रार्थना की और अपने पुत्र तथा अपने प्रधान मन्त्री कनकसिंह के साथ भागकर नवाब के राज्य में पहुँचा । जनवरी १७६३ में नवाब ने गुरगीनखाँ की अधीनता में एक बड़ी सेना मकवानपुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा और स्वयं नवाब बेतिया आकर इस युद्ध का परिणाम देखने के लिए ठहर गया । मीर कासिम तथा अंग्रेजों को यह विश्वास था कि नेपाल में सोने की खानें हैं इसी कारण उनकी ललचभरी दृष्टि नेपाल पर थी । यही कारण था कि मीर कासिम ने मकवानपुर पर आक्रमण किया । भयंकर युद्ध हुआ । गुरगीनखाँ की सेना का समूल नाश हुआ और गोरखों के हाथ में बहुत सी सैनिक सामग्री पड़ गई । इस युद्ध से पृथ्वीनारायन की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसकी प्रतिष्ठा भी ऊँची हो गई ।

जिस समय पृथ्वीनारायन की सेनाएँ पाटन के फाटकों पर युद्ध कर रही थीं उस समय काठमाडू के राजा जयप्रकाशमल्ल और भगाँव के राजा रणजीतमल्ल ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की । अंग्रेजों की नेपाल पर गिद्ध दृष्टि थी । वे उसको हड़पना चाहते थे । अस्तु उन्होंने पृथ्वीनारायन को लिख भेजा कि वे उसके तथा नेपाली राजाओं के बीच मध्यस्थता करना चाहते हैं । परन्तु पृथ्वीनारायन ने अंग्रेजों को उत्तर दिया कि उसे अंग्रेजों की मध्यस्थता की कोई आवश्यकता नहीं है । वह अंग्रेजों से कोई भी वास्ता नहीं रखना चाहता ।

कप्तेन किनलौच की अधीनता में एक अंग्रेजी सेना नेपाल भेजी गई । पृथ्वीनारायन ने अपना ध्यान पाटन से हटा कर अंग्रेज सेना की ओर लगाया । उसने अंग्रेजी सेना को सिन्धुलीगढ़ी तक आने दिया जिससे अंग्रेज समझें कि उसमें उनका सामना करने की शक्ति नहीं है । पृथ्वीनारायन अंग्रेजों से तराई के मैदान में नहीं लड़ना चाहता था । वह चाहता था कि जब अंग्रेज पहाड़ी क्षेत्र में आ जावें तब लड़ा जावे । इसी कारण पृथ्वीनारायन ने सिन्धुली गढ़ी पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने दिया । जब सिन्धुली से अंग्रेजी सेना प्रवेश में बढ़ी तो गोरखा सेना उस पर टूट पड़ी । गोरखा सेना की दो टुकड़ियों ने वीरभद्र तथा वंशराज पाण्डे के सेनापतित्व में अंग्रेजी सेना को बुरी तरह परास्त कर दिया । अधिकांश अंग्रेजी सेना नष्ट हो गई । केवल कप्तेन किनलौच और थोड़े से व्यक्ति इस अपमानजनक पराजय की कहानी सुनाने के लिये बच गए । इस पराजय के उपरान्त अंग्रेजों का पुनः पृथ्वीनारायन से युद्ध करने का साहस नहीं हुआ । अंग्रेजों से निश्चिन्त होकर पृथ्वीनारायन ने पुनः नेपाल की घाटी की ओर अपना ध्यान लगाया ।

पृथ्वीनारायन पूर्व की ओर बढ़ गया और रामकृष्ण राणा की

अधीनता में उसने गोरखा सेना को पाटन की ओर भेजा। रामकृष्ण राणा राणा अहिरामकुंवर का पुत्र था जिससे नेपाल का प्रसिद्ध राणा वंश चला।

गोरखा सेना रामकृष्ण राणा की अधीनता में पाटन की ओर गई और उस नगर को घेर लिया। पाटन की सेना गोरखा सैनिकशक्ति का सामना करने में असमर्थ थी। गोरखा सेनाध्यक्ष ने पाटन के निवासियों को यह धमकी दी कि यदि उन्होंने हथियार नहीं रक्खे तो कीर्तिपुर की भांति वहां के निवासियों की नाक और ओंठ तो काटे ही जावेंगे सीधा हाथ भी काट दिया जावेगा और यदि वे हथियार डाल देंगे तो उनके प्राणों की रक्षा की जावेगी। अन्त में पाटन के नागरिकों ने हथियार डाल दिए। पृथ्वीनारायन ने वहां के नागरिकों के साथ तो क्रूरता का व्यवहार नहीं किया और आरम्भ में वहां के उन प्रधानों का भी उचित आदर सम्मान किया जो कि विश्वासघात करके उससे आ मिले थे और उसको पाटन आने का निमंत्रण दिया था। परन्तु जब नगर पर उसका पूरा अधिकार हो गया और वे सब प्रधान पृथ्वीनारायन के काबू में आगये तो उसने उन सभी प्रधानों को मरवा दिया। उसका सिद्धान्त यह था कि जो एक बार विश्वासघात कर सकता है वह सदव विश्वासघात करेगा।

अब गोरखा सेना काठमांडू की ओर बढ़ी। काठमांडू के प्रधान व्यक्तियों को पृथ्वीनारायन ने धन देकर अथवा भविष्य में पद देने का लालच देकर अपनी ओर पहले ही मिला लिया था। जयप्रकाश के दरबारी सेना तथा अन्य सभी लोग मिले हुए थे। उस समय काठमांडू में नेपाल घाटी का प्रमुख उत्सव इन्द्र यात्रा हो रहा था। सारी सेना उत्सव में मग्न थी। पृथ्वीनारायन की सेना तीन ओर से काठमांडू में घुसी। काठमांडू पर सरलता से अधिकार हो गया। जय प्रकाश अपने थोड़े से विश्वस्त सैनिकों के साथ भागा। बीच में पाटन के राजा को साथ लेकर वह भटगांव गया। अब गोरखा सेना नेपाल की घाटी के गांवों को विजय करती हुई भटगांव पहुंची। प्रत्येक गांव के निवासियों ने गोरखा सेना का बहादुरी से मुकाबला किया। भटगांव का राजा रणजीतमल्ल पाटन का राजा तेजनरसिंहमल्ल और काठमांडू का राजा जयप्रकाशमल्ल तीनों ही इकट्ठे थे। गोरखा सेनाओं ने भटगांव को विजय कर लिया। जयप्रकाश वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए बहुत जख्मी हो गया। तेजनरसिंह को पृथ्वीनारायन ने जेल में डाल दिया जहां वह एक पशु की भांति मरा और रणजीतमल्ल को उसने वाराणसी जाने की आज्ञा दे दी। बात यह थी कि लड़कपन में वह भटगांव आकर रणजीतमल्ल के पास रहा था और उसका मित्र था।

जयप्रकाशमल्ल ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। वह अंत तक बहुत बहादुरी से लड़ा और लड़ते हुए उसने वीर गति प्राप्त की थी। उसके मंत्रियों दरबारियों ने उसके साथ विश्वासघात किया था।

जयप्रकाश पशुपतिनाथ के मंदिर के नीचे बागमती नदी के किनारे आर्यघाट पर मरा। जब जयप्रकाश अपनी मृत्युशय्या पर था पृथ्वीनारायन शाह अपने शत्रु से मिलने गया। पृथ्वीनारायन ने जयप्रकाश से पूछा कहिये अब आप क्या कहते हैं आपने गर्व से कहा था कि आप मुझे पराजित कर कैद करेंगे। जयप्रकाश ने उत्तर दिया—मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ तुम विजयी हुए और मैं परास्त हुआ। नियति को यही स्वीकार था। मुझे केवल इस बात का दुख है कि मेरे आदमियों ने ही मुझे धोखा दिया। वे विश्वासघाती थे, उन्होंने अपवित्र भोजन खाया था। मुझे प्रसन्नता है कि मैं

अब मर रहा हूँ शत्रु की कब्र में रहने से रणभूमि में युद्ध करते हुए मरना कहीं अच्छा है। पृथ्वीनारायन अपने वीर शत्रु जयप्रकाश के इस उत्तर से प्रभावित हुआ। उसने जयप्रकाश से कहा कि यदि आपकी कोई इच्छा हो कहिए मैं पूरी करूंगा। पहले तो जयप्रकाश चुप रहा किन्तु जब पृथ्वीनारायन ने बहुत आग्रह किया तो जयप्रकाश हँसा और फिर गम्भीर हो गया जैसे कि वह कुछ सोच रहा हो। उसका अन्त समीप आ रहा था यकायक उत्तेजित होकर उसने कहा अच्छा तुम मुझे एक छाता और जूते दो। सभी यह सुनकर स्तब्ध हो गए। पृथ्वीनारायन ने कहा कि उसकी वास्तविक इच्छा उस समय तक पूरी नहीं की जा सकेगी जब तक कि मेरी तीन पीढ़ियां सिंहासन पर न बैठ जावें परन्तु उसने एक छाता और जूते जयप्रकाश को दे दिए।

भटगांव के राजा को भी अपने सम्बन्धियों दरबारियों तथा प्रजा से घृणा हो उठी थी। बात यह थी कि सभी ने उसके साथ विश्वासघात किया था। अतएव उसने नेपाल में रहने की अपेक्षा अपने देश को छोड़कर वाराणसी में जाकर रहना उचित समझा। भटगांव के सात अवध (जारज) पुत्र थे। वे सातों पृथ्वीनारायन से मिल गए थे। जब रणजीतमल्ल नेपाल छोड़कर वाराणसी जा रहा था और जब वह चन्द्रगिरी पर्वत के शिखर से नेपाल की घाटी को जीवन में अन्तिम बार देख रहा था उस समय उसने एक कविता कही जिसका आशय यह था कि उस घाटी के लोग विश्वासघाती हैं। उसने उन सात राजवंशीय विश्वासघातियों के विश्वासघात का भी उल्लेख किया।

पृथ्वीनारायन ने उन सातों को बुलाकर उन्हें बहुत धिक्कारा। उनकी नाक कटवा दी और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त करली।

नेपाल की घाटी की विजय करने के उपरान्त पृथ्वीनारायनशाह ने अपने ठाकुर सेनापति कहरसिंह को उत्तर की ओर कुटी और किरग दर्रों तक विजय करने के लिए भेजा जिससे कि भविष्य में तिब्बत नेपाल के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करे।

पृथ्वीनारायन स्वयं रामकृष्ण राणा को लेकर पूर्व की ओर किरान्ती कबीलों से युद्ध करने के लिए चल पड़ा। किरान्ती कबील पूर्व में पहाड़ी प्रदेश में रहते थे और जिस प्रकार पश्चिमीय पहाड़ी प्रदेश के परवतिया (गुरखा) वीर और लड़ाकू थे उसी प्रकार यह किराती लोग भी विकट साहसी और धीर थे। दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ। ऐसा कठिन युद्ध पृथ्वीनारायन की कल्पना से बाहर था। अन्त में गुरखा सेनाओं ने किरान्ती सेना को दूधकोसेल तक ढकेल दिया। वहां धीर और योग्य किराती सेनापति मोहिन्द्रराय ने उसका मार्ग रोक दिया। उस प्रदेश के लोग भाग गए। उन्होंने मोहिन्द्र से भी भागने को कहा किन्तु उसने वहां से हटना स्वीकार न किया। उसकी सेना कम होती जा रही थी, गोरखा सेना उस पर कठोर आक्रमण कर रही थी किन्तु वह वीर रणभूमि से नहीं हटा और लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गया। यह युद्ध २१ जून १७६८ में हुआ था। पृथ्वीनारायन उस घोड़े पर सवार होकर रणभूमि को देखने गया तो उसने उस वीर शत्रु के शव को आदर और सम्मान दिया।

पृथ्वीनारायन यह समझ गया कि उसके लिए भविष्य में ऐसा भयंकर युद्ध लड़ना सम्भव नहीं है इस कारण उसने किरान्ती शासक तथा

उसने आदमियों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार किया और उसके परिवार को अपने संरक्षण में ले लिया। उसने सभी किराती नेताओं को उनके प्रदेश का अपनी अधीनता में राज्यपाल बना दिया। इस प्रकार उसने इन वीर जातियों की स्वामिभक्ति को प्राप्त किया। अब किराती भी गोरखा हो गए। वे गोरखा राज्य के अधीन आ गए।

पूर्व के किराती जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर पृथ्वीनारायन घाटी की ओर लौटा और उसने काठमाडू को अपने राज्य की राजधानी बना कर स्वयं अपने को नेपाल का राजा घोषित कर दिया। अब पृथ्वीनारायन का राज्य पश्चिम में पुराना गोरखा राज्य नेपाल की घाटी पूर्व में सिक्किम तक किराती प्रदेश और उत्तर में तिब्बत तक फैल गया। अभी तक नेपाल की घाटी को ही नेपाल कहा जाता था किन्तु अब इस विशाल राज्य को नेपाल कहा जाने लगा और उसके सभी रहनेवालों को नेपाली या गोरखा कहा जाने लगा।

परन्तु अभी भी पश्चिम में चौबीसी और बाईसी राज्य थे जो कभी भी नेपाल के नवीन राज्य के लिए खतरा बन सकते थे। अतः पृथ्वीनारायन ने एक एक करके उनको समाप्त करना आरम्भ कर दिया। उसने सभी राज्यों को ले लिया। किन्तु जब वह दक्षिण की ओर बढ़ा तो तानाहुन के राजा ने कड़ा मुकाबला किया। पृथ्वीनारायन की सेना पर उसने इतने प्रबल प्रहार किए कि पृथ्वीनारायन ने उससे युद्ध न करना ही उचित समझा। विजित प्रदेश की व्यवस्था करने के लिए वह लौट गया और फिर तानाहुन से लेखा-जोखा पूरा करने के लिए कभी वापिस नहीं आया।

दूसरे वर्ष उसने विजयपुर राज्य पर आक्रमण कर दिया। पृथ्वीनारायन इस राज्य को समाप्त कर देना चाहता था क्योंकि वह भारत को जानेवाले नेपाली मार्गों के बहुत नजदीक था। विजयपुर के राजसिंहासन पर पांच वर्ष का बालक था। उसकी मां तथा उसका प्रधान मन्त्री अगमसिंह बालक राजा को लेकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रदेश में भाग गए। विजयपुर विजय हो गया। पृथ्वीनारायन का विचार था कि यदि यह बालक ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रभाव में रहा तो भविष्य में खतरा हो सकता है। पहले तो उसने यह प्रयत्न किया कि बालक उसके अधिकार में आ जावे। उसने उसे राजसिंहासन पर बैठाने का आश्वासन भी दिया। परन्तु जब वह असफल रहा तो उसने उस प्रदेश को अपने अधिकार में रखने और जो विजयपुर राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी को वार्षिक कर देता था उसे पृथ्वीनारायन ने देना स्वीकार किया।

पृथ्वीनारायन सिक्किम राज्य को विजय कर नेपाल की सीमाओं को भूतान तक ले जाना चाहता था। किन्तु वह अपने जीवन-काल में यह न कर सका। पृथ्वीनारायन ने उन सभी प्रमुख षड्यन्त्रकारियों को जिन्होंने अपने स्वामियों के विरुद्ध उसे सहायता दी थी मरवा दिया था। इसको लेकर बहुधा पृथ्वीनारायन की आलोचना की जाती है। परन्तु उस समय नेपाल में छोटे छोटे राज्यों के दरबारों में इतने अधिक षड्यन्त्रकारी थे कि जब तक पृथ्वीनारायन उनको समाप्त न करता तब तक उसका राज्य भी सुरक्षित नहीं रह सकता था।

पृथ्वीनारायन वीर, साहसी, दूरदर्शी और चतुर राजनीतिज्ञ था। वह

जानता था कि यदि नपा— के इन छोटे छोटे रा—यो को समाप्तकर एक सुदृढ़ नपाल को ज—म नहीं दिया जावेगा तो ब्रिटिश नपाल को विजयकर उसको अपने आधीन कर लेंगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी की गिद्धदृष्टि नपाल पर थी। यदि पृथ्वीनारायन इस सैनिक अभियान द्वारा नपाल को एक सुदृढ और बलवान रा—य न बना देता तो नपाल भी ब्रिटिश साम्रा—य के उदर मे समा जाता। पृथ्वीनारायन ने नपाल का एकीकरण कर उसे अंग्रेजो की दासता से बचा लिया।

यही नहीं उसने अंग्रेजी साम्राज्य के अग्रदूत ईसाई धर्मप्रचारकों को भी नपाल की घाटी से निकाल बाहर किया। उनके मिशन को समाप्त कर दिया। पृथ्वीनारायन अंग्रेजों की चाल को जानता था वह उनसे घृणा करता था अतएव उसने अंग्रेजों को नपाल से दूर ही रखा। यही कारण था कि जब भारत सम्पूर्ण अंग्रेजों की दासता म फस गया नपाल अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर सका। वास्तव म यदि देखा जाय तो पृथ्वीनारायन आधुनिक नपाल का जनक है।

पृथ्वीनारायन नपाल विजय के उपरान्त अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा। अपनी विजय के उपरान्त जो थोड़े समय वह जीवित रहा उसमें उसने अपने विशाल राज्य के प्रशासन मे सुधार किए, मुद्रा मे सुधार किया। यही नहीं उसने गोरखा सेना को सुसंगठित किया और उसे एक सबल सेना बना दिया।

पृथ्वीनारायन बीमार पड़ गया। उसकी बीमारी बढ़ती। गई वैद्यों ने उसे शरद ऋतु में देवघाट जाने की राय दी क्योंकि वहाँ की जलवायु गरम है। कुछ इतिहास-लेखकों का कहना है कि पृथ्वीनारायन १७७१ या १७७२ म मोहन तीर्थ म गंडक नदी के समीप मरा परन्तु वास्तव म उसकी मृत्यु १७७५ म हुई। पृथ्वीनारायन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र प्रतापसिंह शाह नपाल के राजसिंहासन पर बैठा।

अध्याय छठा

नैपाल का विस्तार

महाराज पृथ्वीनारायनशाह की मृत्यु होते ही उसके ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंहशाह ने अपने भाई बहादुरशाह को कैद कर लिया जिससे कि उसके सिंहासनारूढ़ होने में कोई कठिनाई न हो। कुछ समय उपरान्त प्रतापसिंह शाह ने अपने भाई बहादुरशाह को देशनिकाला दे दिया।

यद्यपि प्रतापसिंहशाह अपने पिता के समान सक्षम और प्रभावशाली शासक नहीं था परन्तु उसमें पिता के समान ही नेपाल के विस्तार की महत्वाकांक्षा मौजूद थी। फिर पिता द्वारा छोड़ी हुई एक सुसंगठित और अनेक युद्धों का अनुभवप्राप्त सेना उसके पास थी। उसने सिक्किम के कुछ भाग को अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया। उधर चौबीसी राजे बहुत गड़बड़ करते थे। वे नेपाल के महाराजा की अधीनता को स्वीकार करते हुए भी कभी कभी उसकी प्रभुता को चुनौती देते थे। अस्तु प्रतापसिंहशाह ने उनका दमन करने का निश्चय किया। उसने शीघ्र ही सोमेश्वर उपाद्रोंग और जोगीमारा पहाड़ी राज्यों को विजयकर उनकी सत्ता को समाप्त कर दिया। १७७७ में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र बालक रणबहादुरशाह नेपाल के सिंहासन पर बैठा। बालक रणबहादुरशाह छोटी उमर का था इस कारण राज्यशासन चलाने के अधिकार को लेकर उसके चाचा बहादुरशाह और उसकी मां में भयंकर विग्रह उठ खड़ा हुआ। बात यह थी कि बहादुरशाह को जब देशनिकाला दे दिया गया तो वह बिहार के बेतियाह स्थान पर रहने लगा था। ज्यों ही उसे अपने भाई प्रतापसिंहशाह की मृत्यु की सूचना मिली वह बिहार से नेपाल वापस लौट आया तथा रिजेंट बनकर नेपाल का शासन करने के अपने अधिकार की घोषणा की। राजमाता ने उसका विरोध किया। दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। राजमाता विजयी हुई और बहादुरशाह को एक बार पुनः देश से भागना पड़ा।

राजमाता राजेन्द्रलक्ष्मी के शासनकाल में उसके प्रसिद्ध सेनापति रामकृष्ण राणा ने नेपाल की सीमाओं का पश्चिम में और अधिक विस्तार किया। उसने लमजुंग (?) और गुरुंगकोट (?) को विजय किया। लामजुंग तथा तानाहुंग को भी उसने परास्त कर दिया यद्यपि उन दोनों युद्धों में विजितों ने अद्भुत शौर्य और वीरता का प्रदर्शन किया था।

कुछ समय के उपरान्त राजमाता राजेन्द्रलक्ष्मी की भी मृत्यु हो गई। बहादुरशाह शीघ्र ही नेपाल लौट आया तथा उसने नेपाल का शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया। बहादुर शाह के शासनकाल में तथा बाद को रणबहादुरशाह के शासनकाल में नेपाल की सेनाओं ने

दामोदर पांडे सरूपसिंह रामकृष्ण राणा और अमरसिंह थापा जैसे वीर और कुशल सेनापतियों की अधीनता में पाल्पा को छोड़ कर सभी चौबीसा और बाईसा राजाओं को सदा के लिए परास्त कर दिया और किरान्ती नेताओं की स्वतन्त्रता को समाप्त कर किरान्ती प्रदेश को पूर्ण रूप से नेपाल शासन के अधीन कर लिया। नेपाल की सेनाओं ने पश्चिम में गढ़वाल और कुमायूं प्रदेश पर भी अपना अधिकार कर लिया।

१७८८ में बहादुरशाह ने मोरंग के गोरखा सूबा को ६ हजार सैनिकों के साथ सिक्किम पर आक्रमण करने के लिए भेजा। किरातों प्रदेश से उसने सिक्किम पर आक्रमण किया। सिक्किम की राजधानी गंगटोक तक नेपाली सेनाएं बिना अधिक समय लिए बढ़ती गईं। सिक्किम का राजा एक बहुत बड़ी सेना लेकर नेपाल की सेना का सामना करने आया। भयंकर और घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि नेपाली सेनाओं ने सिक्किम की सेनाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त की और सिक्किम की अधिकांश सेना नष्ट हो गई परन्तु नेपाल की सेना को भी इस युद्ध में गहरी क्षति उठानी पड़ी। सिक्किम का राजा भाग कर तिब्बत चला गया। सिक्किम के राजा ने तिब्बत की सीमा में पहुँच कर ल्हासा सरकार से सहायता की प्रार्थना की। ल्हासा सरकार ने चीन सरकार से नेपाल के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की क्योंकि पिछले कुछ वर्षों से नेपाली सेनाएं कुटी के दुर्गम दर्रे को पार कर तिब्बत को पदाक्रान्त कर रही थीं। नेपाल तिब्बतियों को अपने यहां खोटे सिक्कों का प्रचलन करने से रोकना चाहता था। चीन सम्राट तिब्बत तथा समीपवर्ती पर्वतीय प्रदेश में गोरखा सेनाओं के इन आक्रमणों से चौंका। उसने देखा कि गोरखा सेनाएं तिब्बत में घुस रही हैं तथा चुम्बी घाटी के व्यापारिक मार्ग पर अधिकार जमाना चाहती हैं। अस्तु, उसने तिब्बत की सहायता के लिए सेना भेजने का निश्चय किया।

नेपाल को यह बहुत दिनों से शिकायत थी कि तिब्बती व्यापारी नेपाल में खोटे सिक्कों का प्रचलन करते हैं। इस बहाने उन्होंने तिब्बत पर आक्रमण करने की योजना तैयार की। नेपाल के शासकों की दृष्टि तिब्बत के धनी मठों पर लगी हुई थी। वे उनके धन को प्राप्त करना चाहते थे। नेपाल की सेना नेसर-जोंग तक तिब्बत में घुसती चली गई। नेसर-जोंग को नेपाली सेना ने घेर लिया। तिब्बत की सेना ने कई बार प्रयत्न किया किन्तु नेपाली सेना ने हर बार उसे मार भगाया। फिर भी नेपाली सेना पूरी तरह से तिब्बती सेना को परास्त न कर सकी। परन्तु गोरखा सेना ने उस स्थान की कल्पनातीत सम्पत्ति को लूटा। उसी समय चीनी सेनापति 'थान-चूं' एक बहुत बड़ी चीनी सेना के साथ ल्हासा आया। सम्राट ने उसे नेपाली सेना को तिब्बत के बाहर खदेड़ देने की आज्ञा दी थी।

इस सम्बन्ध में चीनी इतिहासकार वी-यूआन का विवरण यहां देना उचित होगा। गोरखा शासकों ने नेपाल के व्यापारिक माल पर अधिक कर लगाने और नमक में मिट्टी मिली होने का बहाना करके तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। चीन सरकार ने जिन सेनापतियों को गोरखा सेना को तिब्बत से निकाल बाहर करने में ल्हासा सरकार की सहायता के लिए भेजा था उन्होंने दलाईलामा को सलाह दी कि वह प्रतिवर्ष १५ हजार स्वर्ण सिक्के

मिलने आये। बहादुरशाह ने कहला भेजा कि वह चीनी सेनापति को यह सम्मान नहीं दे सकता। यदि वह उससे मिलने जाना चाहता है तो जा सकता है अन्यथा वह अपने स्वामी के पास वापस जा सकता है। चीनी सेनापति ने उस अपमान को पी लिया और काठमांडू आया। वहां भी उसका विशेष सम्मान नहीं किया गया। उसका स्वागत करने के लिए एक नेपाली चोबदार को भेजा गया और उसको प्रतीक्षा कराई गई। चीनी सम्राट के पत्र में यह मांग की गई थी कि नेपाल सरकार ५२ करोड़ रुपए ल्हासा सरकार को दे, ल्हासा के जिस मंत्री को नेपाली सेना ने कैद कर रखा है उसको सौंप दिया जावे। बहादुर शाह ने चीन सम्राट की उन मांगों को ठुकरा दिया।

जब दूत अपमानित होकर लौटा और चीन सम्राट को नेपाली शासक द्वारा की गई असभ्यता की सूचना दी गई तो सम्राट ने सैनिक अभियान की आज्ञा दी। मान्चू फू कांगान ने पुनः काठमांडू से सम्राट की मांगों को पूरा करने को कहा। नेपाल के शासक ने तिब्बत के मन्त्री को इस बात पर छोड़ने का वचन दिया कि संधि हो जावे। तब चीनी सेनापति ने युद्ध की घोषणा करदी। बहादुरशाह ने नेपाल के अत्यन्त कुशल और योग्य सेनापति दामोदर पांडे को चीनी सेना का सामना करने के लिए भेजा।

यद्यपि चीनी सेना बहुत बड़ी थी पर नेपाली सैनिक बड़ी वीरता और साहस से लड़े। दामोदर पांडे बड़ी वीरता के साथ चीनी सेना पर आक्रमण करता हुआ पीछे हटता जाता था। यद्यपि चीनी सेना बहुत बड़ी होने के कारण नेपाली आक्रमण को सहन कर लेती थी परन्तु उसकी बहुत क्षति होती थी। नेपाली सेना इस वीरता और साहस से लड़ी कि चीनी सेना आतंकित हो गई। उस ऊंचे पर्वतीय प्रदेश में नेपाली सेना का साहस और शौर्य देखकर चीनी सेना चकित और भयभीत हो उठी। नेपाली सेना ने चीनी सेना को कई युद्धों में पराजित किया और क्षति पहुँचाई। परन्तु दामोदर पांडे योजना के अनुसार पीछे हटता जा रहा था। पीछे हटने के बाद वह मार्गों और पुलों को नष्ट करता जा रहा था। इस कारण चीनी सेना को आगे बढ़ने में बहुत अधिक कठिनाई होती थी। अगस्त १७९२ में बेतरावती नदी को जहां से पार किया जा सकता था और नवकोट को मार्ग जाता था वहां दामोदर पांडे अपनी सेना सहित नदी के दूसरे किनारे पर छिप गया। उसने चीनी सेना को उस संकीर्ण पुल पर आने दिया और जब चीनी सेना पुल पर आ गई तो उसने भयंकर वेग से चीनी सेना पर आक्रमण कर दिया। सामने गोरखा सैनिक भयंकर मार मार रहे थे और पीछे से पहाड़ी पर से उतर कर जो विशाल चीनी सेना आगे बढ़ रही थी वह पीछे से चीनी सेना को धक्का दे रही थी। चीनी सेना बुरी तरह से पराजित होने लगी। समस्त चीनी सेना में घबराहट फैल गई। वह भयभीत होकर आतंकग्रस्त हो गई। उसी समय दामोदर पांडे ने पुल को तोड़ दिया और वह उस स्थान की भयंकर वेग से बहने वाली नदी में बह गया।

गोरखा सेना का पूर्वीय भाग सिपाहियों की लूट का बहुमूल्य माल लिये आगे बढ़ रहा था। साधारणतया उसे कुती घाटी से नेपाल की ओर बढ़ना चाहिए था परन्तु उसके सेनापति को भय था कि वहां नेपाली सीमारक्षक तथा चौकी अधिकारी उनके सामान की जांच करेंगे और जो लूट का बहुत माल सैनिक ला रहे थे वह उनसे ले लिया जावेगा। अतएव उन्होंने कुती घाटी से न जाकर हातिया या नोवतोलन दर्रे से जाना निश्चित किया। इस भयानक दर्रे

की भयावहता सर्वविदित थी। इस भयानक दर्रे में हिम और बर्फीली तेज हवाओं से दो हजार नेपाली सैनिक मर गए। लेकिन वे लूट का सामान लेकर उस भयानक दर्रे को पार कर गए। उस दर्रे की भयानकता और वहां की विपत्तियों की कथा को आज तक नेपाल नहीं भूला है।

बहादुरशाह से उस समय बड़ी राजनीतिक भूल हुई। उसने भूल से समझ लिया कि चीनी सेना बहुत बलवान है और कहीं वह नेपाल पर आक्रमण न कर दे अतः उसने चीनी सेना से संधि करने की चर्चा की। उसने तिब्बत के वजीर को छोड़ दिया शुमहरलामा को नेपाल से बाहर चले जाने को कहा। शुमहरलामा ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। परन्तु वास्तविक स्थिति यह थी कि चीनी सेना उस भयंकर युद्ध से थक गई थी और आतंकित थी। अतः उन्होंने तुरंत संधि कर ली। उस संधि के अनुसार यह निश्चित हुआ कि प्रति पांचवें वर्ष नेपाल एक प्रतिनिधिमंडल भेंट लेकर चीनी सम्राट की सेवा में पेकिंग जाया करेगा। जहां तक दिगार्चो की लूट के माल का प्रश्न है चीन इतिहासकारों का कहना है कि फूकांगान ने नेपालियों को उस माल को वापस करने पर विवश किया। किन्तु नेपाली इतिहासकारों का कहना है कि लूट के माल में से एक पैसा भी वापस नहीं किया गया। बहादुरशाह ने संधि करके भूल की। इस कारण नेपाली सेनापति जो जानते थे कि चीनी सेना कैसी दुर्दशा में है और उनका नेपाल पर आक्रमण करने का कभी साहस नहीं हो सकता अपने शासक से नाराज हो गए।

तिब्बत को इस समय में हानि ही हुई। उसे कोई क्षति-पूर्ति की रकम नहीं मिली। ऊपर से चीन की सेना तिब्बत में कई वर्षों के लिए जम गई।

जब यह युद्ध चल रहा था तब तिब्बत और नेपाल दोनों ने ही अंग्रेजों से सहायता चाही। लार्ड कार्नवालिस ने उन दोनों को ही सैनिक सहायता देने से इनकार कर दिया, क्योंकि अंग्रेजों से दोनों देशों की मित्रता थी।

जब सुदूर तिब्बत में नेपाली सेनाएं चीनी सेनाओं से जूझ रही थीं उसी समय गोरखा सेनाएं रामकृष्ण राणा तथा बाद में अमरसिंह थापा के नेतृत्व में गढ़वाल और कुमायूं प्रदेश पर आक्रमण कर रही थीं। गोरखा सेनाओं ने कुमायूं प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली। १७९२ में जब गढ़वाल पर भी गुरखा सेना की विजय समीप थी और गढ़वाल का पतन होने ही वाला था कि अमरसिंह को वापस बुला लिया गया। कारण यह था कि चीनी सेनाएं नेपाल की घाटी के द्वार पर पहुंच चुकी थीं। नेपाल जैसे छोटे देश की सैनिक शक्ति और गोरखा सैनिकों की वीरता अद्भुत थी नहीं तो नेपाल जैसा छोटा देश उत्तर में चीन पूर्व में सिक्किम और पश्चिम में गढ़वाल और कुमायूं से एकसाथ युद्ध कैसे कर सकता था।

इसके पश्चात ८० में दामोदर पांडे और उसके बाद अमरसिंह थापा के नेतृत्व में गुरखा सेनाओं ने गढ़वाल को विजय कर लिया। दूनकी घाटी में गुरुधना के समीप निर्णायक युद्ध में गोरखा सेनाएं विजयी हुईं। गढ़वाल की सेनाएं नष्ट हो गईं और गढ़वाल का राजा प्रद्युम्न मारा गया।

इस प्रकार १८ ३ तक नेपाल का राज्य सिक्किम के मध्य से काश्मीर राज्य की सीमा तक फैल गया। केवल पाल्पा का अब स्वतंत्र राज्य ही बचा हुआ था। पाल्पा का राजा महादत्त दक्षिण में अवध के नवाब वजीर

का गहरा मित्र था इस कारण नेपाल के शासक उसको छोड़े हुए थे। वह एक प्रबल वेगवान समुद्र की भयंकर लहरों में एक छोटे द्वीप के समान किसी प्रकार अपने अस्तित्व को बचाए हुए था।

नेपाल का दुर्दमनीय तथा वीर सेनापति एक बार फिर अपनी विजयवाहिनी को लेकर काश्मीर राज्य की ओर बढ़ा। उसके साथ भागते थापा भी था। अमरसिंह थापा ने काश्मीर राज्य में घुस कर कांगड़ा के किले पर आक्रमण किया और भागतेथापा ने सुजानपुर पर धावा बोल दिया। नेपाली सेनाओं ने दोनों को घेर लिया और ऐसा दिखलाई देने लगा कि नेपाली सेनाएं इन दोनों किलों पर विजय प्राप्त कर उस प्रदेश पर अपना अधिकार कर लेंगी। कांगड़ा का राजा संसार किले के बाहर निकलकर युद्ध कर रहा था। संसार ने प्रबल शक्तिमान लाहौर के सिक्ख महाराजा रणजीतसिंह से सहायता की प्रार्थना की। उधर अमरसिंह थापा ने अंग्रेजों से सहायता चाही परन्तु अंग्रेजों ने इस झगड़े में पड़ना स्वीकार नहीं किया। महाराजा रणजीत सिंह ने देखा कि इन पहाड़ी राज्यों को अपनी अधीनता में लाने का अच्छा अवसर है अस्तु एक बहुत बड़ी सेना को उसने अमरसिंह थापा के विरुद्ध भेजा। अमरसिंह थापा की छोटी सी सेना उसका सामना न कर सकी। उसको सिरमूर राज्य की ओर भागना पड़ा। सिरमूर का राजपूत राजा करनप्रकाश उस समय सिरमूर की गद्दी पर था। सिरमूर के राजा करनप्रकाश की एक वर्ष पहले अमरसिंह थापा रक्षा कर चुका था। बात यह थी कि एक वर्ष पूर्व कांगड़ा के राजा संसार तथा हिंडूर के राजा ने सिरमूर पर आक्रमण किया था। दो राज्यों के सम्मिलित आक्रमण का सिरमूर का राजा सामना नहीं कर सकता था। भयभीत होकर उसने अमरसिंह थापा से सहायता चाही। अमरसिंह थापा ने नागत थापा को एक हजार सेना देकर उसकी सहायता को भेजा। सिरमूर का राजा आगे बढ़ा किन्तु दोनों राज्यों की सम्मिलित सेना के सामने न टिक सका। यह जान कर अमरसिंह थापा के शिविर में आ गया। तब अमरसिंह थापा ने हिंडूर की सेनाओं पर आक्रमण किया और उन्हें परास्त किया। उसके उपरान्त वह कांगड़ा की ओर बढ़ा। अमरसिंह थापा समझता था कि सिरमूर का राजा इस समय उसकी सहायता करेगा। अस्तु अमरसिंह थापा ने सिरमूर के राजा को बुला भेजा परन्तु सिरमूर के राजा ने यह समझ कर कि अमरसिंह थापा की सेनाएं सिक्खों से पराजित होकर नष्ट हो गई हैं तथा अमरसिंह थापा की शक्ति क्षीण हो गई है आने से इनकार कर दिया। यद्यपि गोरखा सेना उस समय अत्यन्त अस्त व्यस्त थी और नेपाली सेना को अत्यन्त जोखिम का सामना करना पड़ रहा था किन्तु अमरसिंह थापा को क्रोध आ गया। उसने अपने पुत्र की अधीनता में एक टुकड़ी सिरमूर पर आक्रमण करने के लिए भेजी। राजा भाग गया और अमरसिंह थापा ने सिरमूर राज्य को नेपाल में मिला लिया। अब वह हिंडूर की ओर बढ़ा किन्तु अंग्रेज नेपाल के इस विस्तार से सशंक हो उठे। अतएव उन्होंने अमरसिंह थापा को चेतावनी दी कि यदि वह आगे बढ़ेगा तो अंग्रेजों को हस्तक्षेप करना होगा। अमरसिंह थापा की सेना की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह अंग्रेजों से युद्ध कर सकता अतएव वह चुप हो गया और आगे नहीं बढ़ा।

उन दिनों जब कि नेपाल की रणपराक्रमी सेनाएं चीन तिब्बत पंजाब और अंग्रेजों को आतंकित कर रही थीं नेपाल के दरबार में षड्यन्त्र

चल रहे थे। यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि राजमाता तथा पहले दुरगाह में राज्यशासन अधिकार के लिए झगड़ा हुआ और राजमाता नेपाल का शासन करती रहीं। उनकी मृत्यु के उपरान्त बहादुरशाह के हाथ में देश का शासन-अधिकार आ गया। उसने तरुण महाराजा को व्यभिचारी और निकम्मा बनाने की भरसक चेष्टा की जिससे कि वह ऐसा निकम्मा हो जाये कि उसको कभी भी शासन करने योग्य न समझा जाये। तदनन्तर उस तरुण महाराजा को स्त्रियों और शराब के बीच रखना और उसको व्यभिचारी और निकम्मा बनाने के सारे प्रयत्न किये। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना था कि यदि उसकी हत्या कर दी जाती तो अच्छा था। परन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह वांछनीय नहीं था। परिणाम यह हुआ कि तरुण महाराजा रणबहादुर शाह अत्यन्त व्यभिचारी जिद्दी और सनकी बन गया। उसने त्रिपुरा सुन्दरी गुल्मी राजा की लड़की से विवाह किया परन्तु उससे कोई सन्तान न होने के कारण उसको उपेक्षित कर दिया। वह अन्य स्त्रियां भी रखता था और उसकी रखैल एक दासी पत्नी से उसका पहला पुत्र उत्पन्न हुआ।

१७८५ में उसने अपने को महाराजा (राजसत्ताधारी) घोषित कर अपने चाचा बहादुरशाह को गिरफ्तार कर उसको मरवा दिया। सबसे पहले उसने जुमला राजा के विरुद्ध अभियान किया जिसे सभी पहाड़ी राजा अपना बड़ा नेता मानते थे। उसने जुमला राजा को राजदरबार दल से बाहर कर दिया। वह भाग कर अवध के वजीर की शरण में चला गया। रणबहादुरशाह एक अत्यन्त सुन्दर विधवा ब्राह्मण युवती पर आसक्त हो गया और उसको बलपूर्वक भगाकर उसने अपने महल में रख लिया। हिन्दुओं में विधवा ब्राह्मणी से यौन सम्बन्ध रखना पापकर्म माना जाता था। अस्तु पण्डितों ने राजा तथा उसकी विधवा ब्राह्मणी उपपत्नी को श्राप दिया और उनको नीच घोषित किया। कुछ लोगों का कहना है कि रणबहादुर ने ब्राह्मणी को इस कारण अपनी पत्नी बनाया कि जिससे मगर नेपाल जातियों की जाति ऊंची हो जावे। कुछ समय के उपरान्त उसके चेचक निकल आई। रणबहादुरशाह ने ब्राह्मणों तथा पुरोहितों को यज्ञ पूजा-पाठ और अनुष्ठान करने के लिए कल्पनातीत धन दिया। वह बच तो गई परन्तु उसका सौंदर्य चला गया। जब उसने शीशे में अपना कुरूप चेहरा देखा तो उसने आत्महत्या कर [illegible] हो गया। उसने ब्राह्मणों [illegible] छीन लिया। मन्दिरों तथा [illegible] नोपधियों का मरवा दिया जिन्होंने मन्दिरों को नष्ट करने को मना किया। रणबहादुरशाह के विधवा ब्राह्मणी से विवाह कर लेने पर ब्राह्मणों ने उसको श्राप दिया। ब्राह्मणी बीमार हो गई। ब्राह्मणों ने एक लाख रुपए श्राप उतारने के मांगे कितने रुपए दे देने पर भी वह नहीं बची व मर गई। इस पर रणबहादुरशाह बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने ब्राह्मणों की सम्पत्ति छीन ली। उनके मन्दिर तथा मूर्तियों को तोड़ डाला। इस कारण जनता विरोधी हो उठी रणबहादुर को सिंहासन छोड़ना पड़ा। उसकी ब्राह्मण रानी ने भी मरते समय उसको राजसिंहासन छोड़ने को कहा था। अपनी प्रिय रानी की मृत्यु के उपरान्त वह सनकी हो गया। उसने और भी अधिक धार्मिक और राजनीतिक अत्याचार किये।

इस घोर अधार्मिक कृत्य से समस्त नेपाल घाटी की जनता उसके

विरुद्ध उठ खड़ी हुई। ब्राह्मणों ने उसको श्राप दिया। रणबहादुरशाह ने भयभीत होकर राजसिंहासन छोड़ दिया। उसकी विधवा ब्राह्मणी सुन्दरी का पुत्र गिरवान युद्धविक्रम सिंहासन पर बैठा। रणबहादुरशाह भगवत भक्ति करने तथा अपने पापों से मुक्ति प्राप्त करने काशी चला गया। यह घटना सन् १८०० की है।

रणबहादुर के पूर्व नेपाल का शासन महाराजाधिराज 'भारादार' राज्य का भार वहन करनेवाली परामर्शदात्री सभा की सहायता से करता था। भारादार में एक चौतरिया (मुख्य मंत्री) ४ काजी (मंत्री) चार सरदार सैनिक सेवा करनेवाले २ खरदार १ कपरदार (महल के प्रबंधक) और १ खजांची होता था। रणबहादुरशाह ने एक चौतरिया और ४ काजी (मंत्रियों) को नियुक्त करना शुरू किया था।

रणबहादुरशाह की वास्तविक धर्म-पत्नी त्रिपुरा सुन्दरी उसके साथ काशी चली गई और उसकी दासी उपपत्नी 'चेती' बालक महाराजा की अभिभावक बनी और शासन करने लगी। यद्यपि उसकी धर्म पत्नी त्रिपुरा सुन्दरी उसके प्रति सच्ची और विश्वासपात्र रही परन्तु फिर भी रणबहादुरशाह का व्यवहार उसके प्रति कठोर रहा। वास्तव में रणबहादुरशाह ने जब सिंहासन त्याग किया तभी वह अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगा था और उसकी संन्यास लेकर काशी जाने की इच्छा लुप्त हो गई थी। वह पुनः सिंहासन प्राप्त करने के लिए काशी न जाकर पाटन की ओर चला गया और वहां उसके समर्थक चारों ओर इकट्ठे हो गए। परन्तु दामोदर पांडे ने शीघ्रतापूर्वक कार्यवाही की। पाटन में रणबहादुरशाह के समर्थकों को उसने वहां से भगा दिया और रणबहादुरशाह को देश छोड़कर काशी जाने पर विवश किया। रणबहादुरशाह दामोदर पांडे तथा उसके घराने से वैर रखता था।

वाराणसी में भी रणबहादुरशाह का जीवन पूर्ववत ही चलता रहा। वह विलासिता में अनाप-शनाप व्यय करता और अपना व्यय चलाने के लिए उसने ऋण लेना आरम्भ किया। चतुर अंग्रेजों ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। वे निर्वासित नेपाल के शासक के ऋण वन गये। उस ऋण की अदायगी के संबंध में अंग्रेजों ने रणबहादुरशाह से एक संधि की। उस संधि में रणबहादुर ने यह स्वीकार किया कि भविष्य में नेपाल दरबार को एक अंग्रेज प्रतिनिधि (रजीडेंट) को स्वीकार करना चाहिए। १८०१ में यह संधि हुई और फरवरी १८०२ में कप्तान नाक्स प्रथम अंग्रेज रजीडेंट की हैसियत से नेपाल में घुसे। यद्यपि रणबहादुरशाह की उपपत्नी दासी चेती सम्भवतः उसको स्वीकार करने के पक्ष में थी परन्तु नेपाल के सामन्त तथा दरबारी इसके विरुद्ध थे। वे इस कारण इस संधि के और अधिक विरुद्ध थे क्योंकि रणबहादुरशाह ने यह संधि की थी। कप्तान नाक्स को विवश होकर १८०३ में वहां से लौट आना पड़ा। पुनः एक नई संधि अंग्रेजों ने रणबहादुरशाह से की और दामोदर पांडे के आग्रह पर चेती शासिका ने उस पर हस्ताक्षर भी कर दिए परन्तु शीघ्र ही उसको समाप्त कर दिया गया।

निर्वासित रणबहादुरशाह अपनी रंगरेलियों में (बनारस में) मस्त था। उसने वाराणसी की एक सुन्दरी को रख लिया और महारानी त्रिपुरा सुन्दरी के समस्त आभूषण उसको भेंट कर दिये। निर्वासित महाराजा ने अपनी पतिभक्त पत्नी से जबरदस्ती समस्त आभूषण छीन कर अपनी नई प्रेयसी को द

दिये । अब त्रिपुरा सुन्दरी की आर्थिक स्थिति दयनीय हो उठी । उसके पास जो कुछ था वह उसके पति ने छीन लिया और दासी बेली शासिका ने उसकी पेंशन बन्द कर दी । निराशा और विवशता के वातावरण में वह अपनी दासियों और नौकरों के साथ अपनी प्रिय मातृभूमि नेपाल की ओर चल पड़ी ।

नेपाल में बेली ने दामोदर पांडे के एक भतीजे को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर दिया । उस तरुण प्रधानमन्त्री ने अपने चाचा के पक्ष का समर्थन न कर उसकी स्थिति को कमजोर करने की भरसक चेष्टा की । पांडे परिवार के प्रत्येक सदस्य को जो सेना के ऊंचे पद पर थे उसने हटा दिया । जिनके पास दुर्ग थे उन्हें दुर्ग रक्षक के पद से हटा दिया ।

पांडे परिवार उसके सम्बन्धी तथा अन्य सामन्त उसके विरुद्ध हो गए । वे उससे घृणा करते थे । उसके शत्रुओं ने मौका पाकर उसकी हत्या करदी । दामोदर पांडे सम्भवत बिलकुल निर्दोष था परन्तु लोगों को उस पर सन्देह हुआ कि यह कुकृत्य उसी का है । दरबार में एक भयंकर गुट बन गया जिसकी नेत्री बेली शासिका थी । बेली दामोदर पांडे से घृणा करती थी । मृत प्रधानमन्त्री के स्थान पर बेली ने एक मोची स्थिति के व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जिसके कारण सभी मुख्य दरबारी नाराज हो गए । जब नेपाल के दरबार में ऊपर लिखे षड्यन्त्र चल रहे थे तो नेपाल की महारानी त्रिपुरा सुन्दरी नेपाल की ओर बढ़ रही थी । पति द्वारा पीड़ित तथा आर्थिक दृष्टि से विपन्न महारानी त्रिपुरा सुन्दरी नेपाल की तराई के समीप पहुंची । तराई का भयंकर ज्वर का मौसम आने ही वाला था । नेपाल की महारानी त्रिपुरा सुन्दरी का ऊंचा चरित्र पतिभक्ति तथा उच्च वंश और उसकी विपन्नता ने नेपालियों के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करदी थी । वह कठिनाइयों का सामना करती हुई पहाड़ों में भटक रही थी । उधर काठमांडू में एक 'दासी' बेली शासन कर रही थी जिससे अधिकांश लोग घृणा करते थे । सेनापति (काजी) दामोदर पांडे ने त्रिपुरा सुन्दरी को नेपाल आने का निमन्त्रण भेजा । नेपाल के दो प्रमुख घरानों पांडे और थापा में कई पीढ़ियों से पारिवारिक शत्रुता थी । उस समय यह शत्रुता और गहरी हो गई । दामोदर पांडे ने महारानी त्रिपुरा सुन्दरी को निमन्त्रित कर उस शत्रुता को चरम सीमा पर पहुंचा दिया ।

जब शासिका ने सुना कि महारानी त्रिपुरा सुन्दरी बढ़ी चली आ रही है तो उसने सेना भेजी और यह आज्ञा दी कि महारानी के सभी पुरुष सहायकों तथा सेवकों को कैद कर लाया जावे । नेपाली सेना ने महारानी त्रिपुरा सुन्दरी के सभी पुरुष सहायकों तथा सेवकों को पकड़ लिया । लोगों का यह विचार था कि असहाय महारानी उन सघन वनों तथा पहाड़ों में भटककर समाप्त हो जायेगी । परन्तु महारानी एक गुरखा राजा की पुत्री थी । उसमें वीर गोरखा वंश का रक्त था वह हताश नहीं हुई उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह पीछे नहीं लौटेगी । अस्तु अपनी थोड़ी सी स्त्री सेविकाओं को लेकर वह भिसापानी आई जहां एक झरने के पास पहाड़ी पर दुर्ग था । काठमांडू से पुन एक सैनिक टुकड़ी महारानी को रोकने के लिए भेजी गई । उस सैनिक टुकड़ी के सेनापति को यह आज्ञा दी गई थी कि वह महारानी को दुर्ग में प्रवेश न करने दे । उस सेनापति की सहानुभूति महारानी के साथ थी परन्तु वह राज आज्ञा की अवहेलना भी नहीं करना चाहता था । अस्तु उसने आज्ञा का मस

रश पालन किया । उसने उस दुर्ग मे अपनी समस्त सेना को ले आकर दुर्ग के फाटक बंद कर लिए । महारानी त्रिपुरा सुंदरी को रोकने का उसने प्रयत्न ही नहीं किया । अब राजधानी मे गहरी चिंता छा गई और एक दूसरी सेना भेजी गई । उस सेना को यह निश्चित आदेश दिया गया था कि महारानी को आगे बढ़ने से रोका जाये । उस सेना के सेनापति को विपत्ति की मारी महारानी त्रिपुरा सुंदरी अपनी सेविकाओं के साथ सडक पर मिली । सेनापति एक वीर और प्रतिष्ठित सैनिक था । बड़े संकोच और हिचकिचाहट के साथ उसने महारानी को राज-आज्ञा बताई । महारानी त्रिपुरा सुंदरी तनिक भी भयभीत नहीं हुई । उसने म्यान से तलवार निकाली और बोली 'क्या तुम गोरखा राजा की धर्मपत्नी को नेपाल की महारानी को, अपने घर म लौटने से रोकने का साहस करोगे ? यह कह कर महारानी ने सेनापति के हाथ पर तलवार से वार किया । सेनापति लज्जित होकर हट गया । उसे बड़ी लज्जा अनुभव हुई कि उसे उस गर्हित कार्य क लिए भेजा गया । महारानी आगे बढ़ती गई और उसी दिन प्रात काल उसने नेपाल की घाटी मे प्रवेश किया । जब वह काठमांडू से पांच मील दूर रह गई तो वह रुक गई । जैसे ही यह समाचार राजधानी म पहुंचा दामोदर पांडे उसकी सेवा मे उपस्थित हो गया । साथ ही सब वर्गों के लोग भी अपनी महारानी क प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने के लिए उसके पास आ पहुंचे । यहां तक कि थोड़े से नीच दर्जे के शासिका के कृपापात्र कर्मचारियों को छोडकर सभी राज्य अधिकारी महारानी की सेवा मे उपस्थित हो गए । शासिका के कृपापात्र राजकर्मचारी निश्चित की ओर भाग गए । शासिका अब अकेली पड़ गई । वह राजा तथा अपने पुत्र के साथ एक मंदिर के शरणस्थल मे चली गई और साथ में खजाने से सारा रुपया तथा सब हीरे जवाहारात भी ले गई ।

अब महारानी त्रिपुरा सुंदरी ने शासनकार्य अपने हाथ मे ले लिया । उसने उदारता और अपने पद के अनुरूप शासन करना आरम्भ किया । उसने दासी शासिका की पेंशन करदी और नेपाल की परम्परा के विरुद्ध उन लोगों को जिन्होंने उसका विरोध किया था न मरवा कर उन्हें क्षमा करवा दिया । उसने दामोदर पांडे को अपना मुख्यमन्त्री बनाया ।

त्रिपुरा सुंदरी तथा दामोदर पांडे दोनों को यह भय था कि रण बहादुर कहीं वापस न लौट आए । उसको संदेह था कि कहीं अंग्रेज रणबहादुर को नेपाल लाने का षडयंत्र न करें । इसी कारण उसने अपने मुख्यमन्त्री की इच्छा के विरुद्ध भी अंग्रेजों से होनेवाली संधि को स्वीकार नहीं किया । दामोदर पांडे ने वाराणसी म एक प्रभावशाली व्यक्ति को लिखा कि वह रणबहादुर शाह को वाराणसी से न आने दे । इसका कारण यह था कि लार्ड वलजली ने नेपाल दरबार को सूचित कर दिया था कि जब अंग्रेजों की नेपाल दरबार से कोई भी संधि नहीं है तब भूतपूर्व महाराजा रणबहादुर कहीं भी आने के लिए स्वतन्त्र हैं । दामोदर पांडे ने जो पत्र वाराणसी के प्रभावशाली व्यक्ति को रण बहादुरशाह को वाराणसी से न आने देने के लिए लिखा था दुर्भाग्यवश रण बहादुरशाह के हाथ पड़ गया और वह तुरंत ही नेपाल की ओर चल पड़ा । लोगों को यह कल्पना भी नहीं हुई कि भूतपूर्व महाराजा वाराणसी छोड चुका है और जब तक कि लोगों को यह मालूम पड़ा कि वह वाराणसी से चल पड़ा है वह नेपाल पहुंच गया ।

दामोदर पांडे सेना लेकर शीघ्र ही आगे बढ़ा। वह रणबहादुरशाह को काठमांडू की ओर बढ़ने नहीं देना चाहता था। जबकि दामोदर पांडे की सेना उसके पास पहुँची तो रणबहादुरशाह ने अपने कनिष्ठ सचिव भीमसिंह थापा से परामर्श किया। भीमसिंह थापा पाल्पा के काजी अमरसिंह थापा का पुत्र, चतुर और साहसी व्यक्ति था। वह जानता था कि नेपाली सैनिकों में राज भक्ति कूट कूटकर भरी है और वे राजा कैसा भी क्यों न हो उसको श्रद्धा से देखते हैं। अस्तु भीमसिंह थापा ने सलाह दी कि महाराजा सेना को अपनी ओर आने के लिए आह्वान करें। रणबहादुरशाह ने निर्भय होकर दामोदर पांडे की सेना तथा उच्च सैनिक अधिकारियों को सम्बोधन करते हुए ऊंचे स्वर में कहा 'आप बतलाइए कि आप मुझ अथवा दामोदर पांडे को अपना स्वामी स्वीकार करना चाहते हैं ?' उसी क्षण समस्त नेपाली सेना भागकर रणबहादुरशाह के पास आ गई और नेपाल के लिए सतत युद्ध करनेवाला और देश भक्त तथा राजनीतिज्ञ दामोदर पांडे तथा उसका पुत्र पकड़कर बांध लिए गए।

रणबहादुर स्वामी अथवा प्रशासक के नाम से शासन करने लगा परन्तु वास्तव में वह महाराजा बन गया। महारानी त्रिपुरा सुन्दरी ने भी अपने स्वामी का स्वागत किया किन्तु रणबहादुरशाह ने वाराणसी की उस सुकुमार सुन्दरी को भी बुला भेजा और उसको बड़े वैभव के साथ अपने रनिवास में रक्खा।

क्रूर रणबहादुर दामोदर पांडे से बदला लेना चाहता था। उधर भीमसेन थापा का पिता अमरसिंह थापा जो दामोदर पांडे का शत्रु था और जिसे पांडे ने कैद में डाल रक्खा था, जेल में पड़ा था। रणबहादुरशाह ने उसे मुक्त कर दिया और उसे अपने घर पाल्पा भेज दिया।

अमरसिंह थापा ने चौबीसी राज्यों के प्रमुख जुमला राजा पर आक्रमण किया किन्तु जुमला राजा ने गोरखा सेना का ऐसा कड़ा मुकाबला किया कि गोरखा सेना उसको पराजित न कर सकी। दो वर्षों तक लगातार युद्ध होता रहा किन्तु जुमला राजा अपनी २२ हजार सेना के साथ बहादुरी से युद्ध करता रहा। रणबहादुरशाह दो वर्ष तक युद्ध करके भी सफल नहीं हुआ। अन्त वह हट गया। जुमला राजा ने यह समझा कि अब युद्ध समाप्त हो गया उसने अपनी सेना के अधिकांश सैनिकों को घर जाने की छुट्टी दे दी। उसी समय रणबहादुरशाह ने पुन उस पर आक्रमण कर दिया। जुमला राजा पराजित हुआ। रणबहादुरशाह ने ऐसी निर्दयता और क्रूरता का परिचय दिया कि निर्दयता भी कांप उठी।

भीमसेन थापा रणबहादुरशाह को दामोदर पांडे के विरुद्ध भड़काता रहता था। रणबहादुरशाह ने दामोदर पांडे को वह पत्र जो उसने वाराणसी लिखा था बतलाया और उसको मृत्युदण्ड देकर वधिकों के सुपुर्द कर दिया। जब दामोदर पांडे और उसके पुत्र को वध करने के लिए ले जाया जा रहा था उस समय पांडे के पुत्र ने विरोध करके जिरह मांगने का प्रस्ताव रक्खा। पुत्र का प्रस्ताव था कि वह सैनिकों से अस्त्र शस्त्र छीनकर युद्ध करे। उनकी वीरता और साहस को देखते हुए यह सम्भव था फिर जो सैनिक उनको वधस्थल पर ले जा रहे थे उनमें से कुछ उनके प्रशंसक और समर्थक थे। किन्तु पिता ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उसका कारण यह था कि उसे भय था कि यदि उन्होंने विरोध किया तो उनका समस्त परिवार समाप्त कर दिया जायेगा।

मस्तु, उसने अपने पुत्र को रोक दिया और इस प्रकार उस वीर और साहसी सेनापति का अन्त हुआ।

रणबहादुर इसी से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसका एक प्रतिद्वन्द्वी पाल्पा का राजा पृथ्वीपाल था। उसने अपना एक दूत पाल्पा के राजा के पास उसकी बहिन से शादी करने का प्रस्ताव लेकर भेजा। उसने कहलाया कि यदि वह अपनी बहिन का उससे विवाह करवे तो वह उसको और अधिक जागीर देगा। पाल्पा के राजा ने अपनी बहिन को अपने छोटे भाई के साथ भेजा। वह स्वयं विश्वासघात के भय से नहीं आया। रणबहादुरशाह ने बहिन और भाई का बहुत अधिक स्वागत-सत्कार किया किन्तु राजा के पुरोहित को भेजकर यह कहलाया कि मैं आपके हाथ से ही कन्यादान स्वीकार करूंगा। उसने शपथ खाई कि आपके साथ कोई धोखा नहीं होगा। मैं आपके हाथों ही आपकी बहिन को स्वीकार करना चाहता हूं। पृथ्वीपाल काठमांडू आया। उसके साथ जो थोड़े सैनिक थे उनके हथियार छीन लिए गए और पृथ्वीपाल को कैद खाने में डाल दिया गया। रणबहादुर ने पाल्पा के राज्य को तथा बुटवाल के जिले को जिसे पाल्पा के राजा ने अंग्रेजों को सौंप दिया था अपने राज्य में मिला लिया। बुटवाल मे मालगुजारी वसूल करने तथा उस पर अधिकार करने के लिए उसने सेना भेज दी। इसी को लेकर दस वर्ष उपरान्त नेपाल और अंग्रेजों का युद्ध हुआ। पाल्पा के राजा की बहिन से होनेवाली शादी के बारे मे आगे कुछ सुनाई नहीं पड़ा। सम्भवत पाल्पा के राजा को यह दण्ड इस कारण मिला क्योंकि उसने रणबहादुरशाह को प्रसन्न करने के लिए अपने पुराने मित्र दामोदर पांडे की विधवा और उसके एकमात्र जीवित पुत्र को उस निर्दयी के सुपुर्द कर दिया था।

अब रणबहादुरशाह ने अपने अवैध भाई शेरबहादुरशाह को बुलाया और उस पर षड्यन्त्र में सम्मिलित होने तथा पाल्पा को नेपाल के सिंहासन पर बैठाने के प्रयत्न करने का आरोप लगाया। उसको काठमांडू छोड़ने तथा सेना में भर्ती होने के लिए कहा गया। परन्तु शेरबहादुर ने आज्ञा को स्वीकार नहीं किया—कहा कि हम दोनों एक ही पिता की सन्तान हैं तुम काठमांडू छोड़कर चलो मैं भी तुम्हारे पीछे चलूंगा। रणबहादुर क्रोध से पागल हो गया। उसने शेरबहादुर के वध करने की आज्ञा दे दी। शेरबहादुर ने भी अपनी तलवार निकाल ली और राजा पर भरपूर वार किया। रणबहादुरशाह का शरीर कट गया। प्रसिद्ध जंगबहादुर का पिता बलनारसिंह कुंवर वहीं खड़ा था उसने अपनी तलवार से शेरबहादुर को मार डाला। जब रणबहादुरशाह मरा तो उसने अपनी ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न अवैध पुत्र गिरवाण युद्धविक्रमशाह को भीमसेन थापा के सुपुर्द कर दिया।

भीमसेन थापा ने दासी रानी को रणबहादुरशाह की चिता पर सती होने के लिए विवश कर उससे छुटकारा पाया। अब भीमसेन ने अपने विरोधियों को एक-एक करके समाप्त करना आरम्भ किया। पचास सेना अधिकारियों तथा अनेक सामन्तों का वध कर दिया गया। उसने अपने पिता अमरसिंह थापा को पाल्पा पर अधिकार कर उस पर नेपाल के महाराजा के नाम पर शासन करने भेजा। पाल्पा के समीप ही महाराजा पृथ्वीनारायणशाह की पुत्री सालियाना के राजा को ब्याही थी। भीमसेन ने उसकी जागीर को जब्त कर लिया तथा उसको और उसके पुत्र को बन्दी बनाकर काठमांडू ले आया।

पृथ्वीपाल का भी उसमें वध कर दिया । इस प्रकार उसने अपने सभी विरोधियों को समाप्त कर अपनी प्रबल समर्थक त्रिपुरा सुन्दरी को शासिका बनाया।

जैसे ही रणबहादुरशाह की मृत्यु हुई वह महाराजा की व्यक्तिगत सेना के सामने गया और उसका समर्थन प्राप्त किया । महलों की सेना का समर्थन प्राप्त करके उसने बड़े हाल को घेर लिया जहां दरबारी इकट्ठे थे और उन सभी का उसने वध कर दिया जो उसके विरोधी थे। उनको मारने का बहाना उसने यह प्रकट किया कि वे राजा को मरवाने में शेरबहादुर के सहायक थे ।

वह अब नेपाल का प्रधानमंत्री बना और राज्य की समस्त सत्ता और अधिकार उसके हाथ में आ गए । उस दिन से वस्तुतः राज्यसत्ता प्रधानमंत्री के हाथ में आ गई । नेपाल का महाराजा नाममात्र का राजा रह गया। वास्तव में वह अपने सफेद महल में एक सम्मानित कैदी की भांति रहता था । नेपाल के राजा उस दिन से प्रधानमंत्री के कहलाने के कैदी बन गए । उस दिन से १९५० तक जबकि महाराजा त्रिभुवन ने प्रधानमंत्री के शासन के विरुद्ध विद्रोह किया नेपाल के महाराजा प्रधानमंत्री के कैदीमात्र थे । यही नेपाल का वास्तविक शासक था।

अब राजसिंहासन पर महाराजा गिरवान युद्धविक्रमशाह बैठा परन्तु उसकी सौतेली मां महारानी त्रिपुरा सुन्दरी अभिभावक शासिका थी और भीमसेन थापा प्रधानमंत्री था ।

यह घटना १८०४ की थी । उस समय नेपाल अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच चुका था । भीमसेन थापा का पिता काजी अमरसिंह थापा काठमांडू से ६०० मील दूर कांगड़ा में युद्ध कर रहा था । नेपाल उस समय पूर्व पश्चिम और उत्तर प्रत्येक दिशा में विस्तार कर रहा था । केवल दक्षिण में अंग्रेजों की शक्ति बढ़ रही थी । उस समय सिक्किम गढ़वाल कुमायूं, सिरमूर और इन के प्रदेश नेपाल के अधीन आ चुके थे। उधर भारत में अंग्रेज मराठों तथा देशी शक्तियों से युद्ध कर अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे । नेपाल में सेना को देखते हुए बहुत बड़ी सेना थी । प्रत्येक प्रधानमंत्री के लिये उस सेना को काम देने के लिये उसका कहीं न कहीं उपयोग करना अनिवार्य था । यदि वह उसको छुट्टी दे देता तो बेकारी फैल सकती थी । यही कारण है कि गोरखा युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों ने गोरखा योद्धाओं को अपनी सेना में भर्ती करना आरम्भ किया था।

यही कारण था कि भीमसेन थापा अंग्रेजों से भी एक बार मोर्चा लेना चाहता था । एक बार उसने भरे दरबार में तरुण महाराजा से कहा—एक बार चीनियों ने हम से युद्ध किया किन्तु उन्हें विवश होकर संधि करनी पड़ी तो फिर अंग्रेज हमारे पहाड़ों में किस प्रकार घुसकर नेपाल पर आक्रमण कर सकते हैं ? भरतपुर का छोटा-सा किला जिसका निर्माण मनुष्यों ने किया था उसे तो अंग्रेज विजय कर ही न सके तो हमारे पहाड़ों जिनका निर्माण भगवान ने किया है उसको पार कर वे हम पर किस प्रकार आक्रमण कर सकते हैं ?

१८०१ में अवध के नवाब वजीर ने गोरखपुर का प्रदेश ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया था । इस कारण नेपाल और ब्रिटिश राज्य की सीमाएं एक दूसरे से मिल गईं थीं । नेपाल ने जान-बूझकर अंग्रेजों के प्रदेश में घुसना आरम्भ कर दिया । धीरे धीरे नेपाल ने तराई के बहुत-से गांवों पर अपना अधिकार कर लिया । नेपाल धीरे-धीरे एक के बाद दूसरे गांव पर अधिकार

समाता था। वे गांव या तो अग्रेजी राज्य के होते अथवा उस प्रदेश के होते जिनके बारे म झगड़ा होता था। सात वर्षों तक यह क्रम चलता रहा। भीमसेन को विश्वास हो गया कि अग्रज उस ओर अधिक ध्यान नहीं दे रहे हैं। अन्त में गवनर जनरल चौंका। उसे स्पष्ट हो गया कि यदि नपाल को रोका नहीं गया तो यह खतरनाक हो जावेगा। उसने काठमाडू को यह सूचना भेजी कि सीमा सबधी झगड़ों को निपटाने के लिए एक आयोग स्थापित किया जावे और उसमे नपाल का एक प्रतिनिधि रहे। यह आयोग यह तय करे कि नपाल ने अग्रेजी राज्य की कितनी भूमि पर अनधिकार कब्जा कर लिया है और भविष्य मे दोनों देशों की सीमा को निर्धारित किया जावे। सीमा आयोग (कमीशन) मे सीमा का निरीक्षण किया और अंग्र जों के दावे को उसने सही मानकर स्वीकार कर लिया। परन्तु नपाल के प्रतिनिधि ने लौटकर भीमसेन को ऐसी गलत रिपोट दी कि उसने कमीशन की सिफारिशों की तो अवहेलना की भविष्य मे भी पहले की नीति अर्थात अग्र जी सीमा के गांवों पर अधिकार करना जारी रक्खा।

भीमसेन थापा के पिता काजी अमरसिंह थापा जो अग्र जों की शक्ति से परिचित था और अधिक अनुभवी और यथार्थवादी था वह यह नहीं चाहता था कि नपाल अग्र जो से युद्ध छेड़े। उसने प्रधानामंत्री को चेतावनी दी कि अंग्र जों से भिड़ना देश क हित म नहीं है। परन्तु भीमसेन ने एक न सुनी। वह युद्ध की तयारी करने लगा और अग्र जी राज्य की भूमि पर कब्जा करता गया। लाड मोयरा जो भी विरोध-पत्र भेजता उसका भीमसेन गोलमाल उत्तर देता। अन्त मे अंग्रेजों ने गोरखपुर के तराई प्रदेश म जिन गावों पर नपाल ने अधिकार कर लिया उनको २५ दिन मे खाली कर देने की मांग की। जब नपाल ने कोई ध्यान नहीं दिया तो लाड मोयरा ने जिलाधीश को आज्ञा दी कि वह नपालियों को हटाने के लिये सेना भेजे। गोरखा सेना ने कोई विरोध नहीं किया और पीछे हट गई।

काठमांडू मे दरबार के बाईस सलाहकारों की सभा हुई। प्रात काल ९ बजे से रात्रि के ८ बजे तक बहस होती रही कि युद्ध किया जाय या नहीं। दरबारियों ने अन्त मे युद्ध करने का निश्चय किया। अमरसिंह थापा ने सुदूर पश्चिम से लिख कर भेजा 'हमने अभी तक हिरनों का शिकार किया है और यदि हम अब युद्ध करना चाहते हैं तो हमें शेरों से लड़ने के लिये तयार रहना चाहिए।' भीमसेन जो युद्ध के पक्ष मे है और अग्र जों को पराजित करना चाहता है दरबार म रहा है। उसको युद्ध की विभीषिका का अनुभव नहीं है। उसने सलाह दी कि अंग्रेजों से संधि की जाये और जिन गांवो पर हमने अधिकार कर लिया है उनको वापस कर दिया जावे। भीमसेन इसके लिये तयार नहीं था क्योंकि उन गांवों की आय उसको मिलती थी।

अप्रेल १८१४ म उस प्रदेश पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया था। मई में स्थिति बिगड़ गई। गोरखा ने सीमा पर बुटवाल जिसे की तीन चौकियों पर आक्रमण कर दिया। अठारह पुलिस के सिपाहियों तथा वहां के थानेदार को उन्होंने मार डाला। गोरखा सेना के उन गांवों से हट जाने पर अंग्रेजों ने वहां यह चौकियां स्थापित की थीं। बात यह थी कि तराई मे जब भयंकर ज्वर रोग फलता था तो नपाली वहां से हट जाते थे। अस्तु जब अंग्रेजों ने वहां चौकियां स्थापित करदी तो नेपालियों ने आक्रमण कर दिया। थानेदार तथा

सिपाहियों के मारे जाने पर अंग्रेजों ने नेपाल को युद्ध की चेतावनी दे दी। उस समय नेपाल के दरबार में युद्ध-समर्थकों का बहुमत था। भीमसेन ने कहा कि यदि अंग्रेज नेपाल से युद्ध करना चाहते हैं तो उन्हें युद्ध मिलेगा। अब उसने चीन पर यह प्रभाव डाला कि अंग्रेज इसलिए नेपाल पर आक्रमण करना चाहते हैं कि जिससे वे आगे चलकर तिब्बत और चीन पर आक्रमण कर सकें। उसने ऐसा प्रदर्शन किया कि मानो नेपाल चीन की ढाल बनकर अंग्रेजों के आक्रमण से चीन की रक्षा करना चाहता है। उसने इस आधार पर चीन से सैनिक सहायता मांगी। कलकत्ता में जब अंग्रेजों को इसकी सूचना मिली तो वे चिंतित हुए। उन्होंने चीन को स्थिति से अवगत कराया और शीघ्र ही नेपाल पर आक्रमण करने का निश्चय किया। लार्ड मायरा ने दीनापुर, वाराणसी, मेरठ, सहारनपुर और लुधियाना में अपनी सेनाओं को इकट्ठा किया। दीनापुर से आठ हजार सैनिकों के साथ जनरल मार्ले ने विचिया कोह तथा हथौरा के दर्रों से काठमांडू पर आक्रमण करने के लिये कूच किया। वाराणसी से जनरल वुड की अधीनता में चार हजार सैनिकों ने सोमा के प्रदेश बुटवाल और शिवराज पर आक्रमण किया। सहारनपुर से जनरल गिलस्पी की अधीनता में ४००० सैनिक दून की घाटी पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े। पश्चिम की ओर जनरल आक्टरलोनी की अधीनता में ६ हजार सैनिक सतलज के किनारे अमरसिंह थापा से युद्ध करने के लिए चल पड़े।

इधर भीमसेन थापा ने भी युद्ध की तैयारियां की। उसने अपने पिता तथा अपने सेनापतियों की अधीनता में सेना को बांटकर अंग्रेजों की सेना के मुकाबले की तैयारी की। १ नवम्बर १८१४ को लखनऊ में गवर्नर जनरल ने नेपाल से युद्ध की घोषणा करदी।

अंग्रेजों की चारों सेनाएं आगे बढ़ीं किन्तु सभी क्षेत्रों में नेपालियों ने कड़ा मुकाबला किया। यद्यपि अंग्रेजों की सेना तीस हजार थी और नेपाल के पास कुल बारह हजार सैनिक थे किन्तु वीर नेपालियों ने अपने से ढाई गुनी सेना को आगे नहीं बढ़ने दिया। जनरल वुड को भीमसेन के भतीजे उजीरसिंह ने पीछे हटने पर विवश कर दिया। अपनी से दुगनी सेना को उजीरसिंह ने पीछे ढकेल दिया। उधर जनरल मोरले ने अपने क्षेत्र में प्रत्येक चौकी पर पांच सौ सैनिकों को रखकर तीन चौकियां स्थापित करली थीं। कर्नल रणवीरसिंह ने उन पर आक्रमणकर उन्हें समाप्त कर दिया। मारले भी पीछे हटा। नेपालियों ने उसकी ऐसी दुर्गत करदी कि उसकी सेना छिन्न भिन्न हो गई। जनरल मारले इतना भयभीत हो गया कि किसी को बिना बताए और बिना चार्ज दिये वह रात्रि को घोड़े पर बैठकर भाग खड़ा हुआ। गवर्नर जनरल को जब यह मालूम हुआ तो उसे हटा दिया और अशक्त घोषित कर दिया।

उधर नेपाली सेना में भी थोड़ा असंतोष उत्पन्न हो गया था। भगतसिंह के पास कुल सौ सैनिक थे। जब वह मारले की सेना के सामने पहुँचा तो उसको तुरन्त आक्रमण करने की आज्ञा दी गई परन्तु अपने से दस गुनी सेना पर आक्रमण करने से वह हिचकिचाया। भीमसेन ने उसे काठमांडू वापस बुला लिया और सैनिक अदालत ने आज्ञा दी कि उसे दरबार में घाघरा पहनकर आने को विवश किया जावे।

उधर अंग्रेजी सेनाएं पश्चिम में अमरसिंह थापा से अल्मोड़ा और

गढ़वाल में लड़ने के लिये आगे बढ़ीं। अमरसिंह थापा का वीर भतीजा बाल बहादुर कालुंगा के किले में थोड़ी सी सेना को लेकर अंग्रेजों की विशाल रण वाहिनी को रोके हुए था। जनरल गिलस्पी ने चार हजार सैनिकों को लेकर उस पर आक्रमण किया किन्तु वीर नेपालियों ने उन्हें बढ़ने नहीं दिया। कई बार अंग्रेजी सेनाओं ने किले पर आक्रमण किया किन्तु उन्हें नेपालियों ने पीछे धकेल दिया। उस युद्ध में जनरल गिलस्पी मारा गया। जब बालबहादुर ने देखा कि भोजन सामग्री किले में समाप्त हो गई तो रात्रि के अंधकार में वह अपने थोड़े से सैनिकों को लेकर निकल गया। यह घटना गुरखा सैनिकों के साहस को प्रकट करती है। जब किले पर तोपों से गोले बरस रहे थे तो एक गोरखा सैनिक भागता हुआ पहाड़ी पर आया। उसने हाथ हिलाया। गोली चलना बंद हो गई। अंग्रेजों ने उसका अपने शिविर में स्वागत किया। उसका निचला जबड़ा गोली लग जाने से क्षत विक्षत हो गया था। वह अंग्रेज सर्जन के पास चिकित्सा के लिये आया था। जब वह अस्पताल से मुक्त कर दिया गया तो उसने पुनः अपनी सेना में जाकर अंग्रेजों से लड़ने की आज्ञा मांगी। अंग्रेज नेपालियों की बहादुरी से परिचित तो थे ही उनकी इस भक्ति से वे आश्चर्य चकित हो गये। गिलस्पी के स्थान पर जनरल मार्टिनडल को नियुक्त किया गया।

मार्टिनडल ने अमरसिंह थापा पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध हुआ। अंग्रेजों की एक तिहाई सेना नष्ट हो गई। परन्तु अमरसिंह के पास बहुत कम सेना थी। अंग्रेजों के पास दस गुनी सेना के अतिरिक्त तोपें बहुत थीं। अमरसिंह बड़ी बहादुरी से प्रत्येक स्थान पर लड़ता रहा। अन्त में मौलान के दुर्ग पर भयंकर युद्ध हुआ। अमरसिंह का बहादुर सेनानायक भागते थापा दो हजार गुरखा सैनिकों को लेकर अंग्रेजों की विशाल रणवाहिनी से भिड़ गया। तोपों की भयंकर मार थी। सैनिक की परवाह न कर वीर भागते थापा अद्भुत रणकौशल दिखा रहा था। उस दिन जैसा भयानक युद्ध हुआ उससे अंग्रेज दंग थे। अपने जीवन की परवाह न कर वीर गोरखे अत्यन्त विषम परिस्थिति में अपनी संख्या से कई गुनी सेना से युद्ध कर रहे थे। उस दिन युद्ध के अन्त में पांच सौ गोरखा वीर सैनिक धराशायी हो गये और वीरवर भागते थापा भी सदैव के लिये रणभूमि में सो गया।

अमरसिंह की स्थिति दयनीय हो गई। उसके सरदारों को जब ज्ञात हुआ कि अल्मोड़ा हाथ से निकल गया तो वे अमरसिंह थापा के पास आए और उससे संधि करने के लिये कहा। अमरसिंह ने संधि करना अस्वीकार कर दिया। वे लोग उसे छोड़कर चले गये। अब अमरसिंह के पास केवल दो सौ सैनिक रह गये थे। यह थोड़े-से सैनिक उस विशाल दुर्ग की रक्षा नहीं कर सकते थे। भागते थापा मर चुका था। अमरसिंह के सहायक सरदार उसे छोड़कर चले गये थे। विवश होकर अमरसिंह ने आक्टरलोनी से संधि की शर्तों के बारे में पुछवाया। आक्टरलोनी अमरसिंह की वीरता और देश भक्ति से इतना प्रभावित हो गया था कि उसने यह स्वीकार कर लिया कि अमरसिंह अपने सैनिकों के व सशस्त्र दो तोपों के साथ तथा अपनी समस्त व्यक्तिगत सम्पत्ति को ले जा सकता है। जयथक में अमरसिंह के पुत्र रणजुरसिंह को भी यही शर्तें स्वीकार किया गया। पिता और पुत्र सड़क पर जहां चाहें मिल सकते हैं। उन्हें सहारनपुर, हरिद्वार, नजीमाबाद होकर काली नदी को पारकर नेपाल में जाना था। इसके अति

रिस्त आक्टरलौनी ने जो शर्तें रखी थीं वे बहुत कठोर थीं। नेपाल को तराई, कुमायूं और गढ़वाल तथा शिमला के जिले अंग्रेजों को देने होंगे। सिक्किम का वह भाग जो नेपाल ने ले लिया है वहां के राजा को लौटाना होगा और काठमांडू के दरबार में अंग्रेज रेजीडेंट को रखना होगा।

भीमसेन थापा ने इस संधि को स्वीकार करने में देरी की। उसे मालूम था कि अंग्रेजों के शत्रु अंग्रेजों से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। लाहौर में महाराजा रणजीतसिंह तैयारी कर रहे थे। अमीरखां के पठान आगरा के समीप से आक्रमण की तैयारियां कर रहे थे। मराठे भी सक्रिय हो गये थे। नेपाल की सफलता ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के सभी शत्रुओं को सक्रिय और आशावान बना दिया था। उसने उस संधि की शर्तों को अस्वीकार कर दिया। उसका ऐसा करना ठीक भी था क्योंकि पूर्व और मध्य में नेपाल की सेनाओं ने अंग्रेजों की सेनाओं को बुरी तरह परास्त किया था। केवल सुदूर पश्चिम में मालौन के युद्ध में अमरसिंह थापा को असफलता मिली थी।

जब अमरसिंह राजधानी काठमांडू में आया तो उसने भी संधि को स्वीकार न किए जाने के पक्ष का नेतृत्व किया। भीमसेन संधि को स्वीकार करने से हिचकिचाता था। लार्ड हेस्टिंग्स तराई को लेना चाहता था। उसके बदले में २० हजार से ३० हजार पौंड प्रति वर्ष क्षतिपूर्ति के रूप में देने को तैयार था। भीमसेन तथा उसके सामन्तों को उस प्रदेश से भारी आमदनी होती थी उस कारण वे उस प्रदेश को देने को तैयार न थे। अस्तु संधि-चर्चा टूट गई। अंग्रेजों ने दीनापुर में सेना संगठित की और आक्टरलोनी को उसका सेनापति नियुक्त किया गया। नेपालियों ने भी चूरिया घाटी के दर्रे की रक्षा तथा काठमांडू के मार्ग में पड़ने वाले दुर्ग मकवानपुर की रक्षा का प्रबंध किया।

अंग्रेज इतिहासकारों तथा सैन्य विशेषज्ञों ने कहा है कि लार्ड क्लाइव से लेकर उस दिन तक भारत में अंग्रेजों को ऐसा भयानक और कठिन युद्ध कभी नहीं लड़ना पड़ा। आक्टरलोनी चौदह हजार सेना को लेकर सारन से जनवरी १८१६ में आगे बढ़ा। वह जानता था कि चूरिया घाटी के दर्रे की नेपाली अन्त तक रक्षा करेंगे। अतएव उसने कोई और मार्ग ढूंढने का प्रयत्न किया। कैप्टेन पिकरगिल ने एक ऐसा मार्ग ढूंढ निकाला जो लोगों को विदित नहीं था और बहुत कम व्यवहार में आता था। रात्रि को आक्टरलोनी ने अपनी सेनासहित उस मार्ग से उस पहाड़ को पार कर लिया। गुरखा सेनापति को प्रातःकाल ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी सेना पहाड़ पार कर गई।

अब रणजुरसिंह हरिहरपुर और मकवानपुर की ओर बढ़ा जिससे कि वहां अंग्रेजों को रोका जा सके। मकवानपुर पर घमासान घोर भयंकर युद्ध हुआ। ऐसा भयंकर युद्ध अंग्रेजों ने नहीं देखा था। नेपाली सेनानायक किशनबहादुरराणा ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और मारा गया। अब अंग्रेजी तोपें भयंकर गोलों की मार करने लगीं। परन्तु गोरखा सैनिक भागने का नाम ही नहीं लेते थे। उस युद्ध में इतने सैनिक मारे गए कि पृथ्वी लाशों से ढक गई। मकवानपुर का पतन हो गया। स्थिति की भयानकता को देखकर रणजुरसिंह तथा उसके साथियों ने रात्रि के अंधकार में हरिहरपुर के दुर्ग को छोड़ दिया। यद्यपि रणजुरसिंह ने बहुत से युद्धों में अभूतपूर्व वीरता प्रदर्शित की थी और देश की सेवा की थी परन्तु हरिहरपुर को छोड़ने का कलंक जीवन भर वह धो न सका।

भीमसेन थापा नहीं चाहता था कि अंग्रेजी सेना नेपाल की घाटी,

में प्रवेश करे । अस्तु उसने पुनः संधि-वार्ता चलाई और ४ मार्च १८१६ को सिगोली की संधि पर हस्ताक्षर हो गए । शर्तें पूर्ववत ही रहीं । नेपाल उन शर्तों से क्षुब्ध था । वह अंग्रेज रेजीडेंट को किसी भी प्रकार सहन नहीं करना चाहता था ।

उस युद्ध के फलस्वरूप आक्टरलोनी को वीर गुरखों के अद्भुत शौर्य का परिचय मिला । उसने गवर्नर जनरल तथा प्रधान सेनापति को लिखा कि हमें गोरखों को अपनी सेना में भरती करना चाहिए । ऐसे वीर सैनिक हमें कहीं नहीं मिल सकते । तभी से गोरखा सैनिक अंग्रेजी सेना में भरती होने लगे।

गोरखा सैनिकों के सम्बन्ध में जौनशिप ने १८१६ में लिखा था "वीरों में सर्वश्रेष्ठ वीर" पुनः उसने लिखा मैंने अपने जीवन में ऐसी दृढ़ता और वीरता कहीं नहीं देखी । वे भागने का नाम नहीं लेते । उन्हें मरने का मानो भय ही नहीं है । जब उनके साथी एक एक कर हमारी तोपों और गोलियों से धराशायी हो रहे थे वे निर्भय हो युद्ध कर रहे थे ।

आक्टरलोनी ने लार्ड हेस्टिंग्स से कहा था कि गोरखा सैनिकों की तुलना कोई सैनिक नहीं कर सकता । गुरखा सैनिक आध घंटे में भोजन कर लड़ाई के लिए तैयार हो जाता है और कई दिनों के लिए भोजन सामग्री अपनी पीठ पर लेकर चल सकता है । नेपाल युद्ध से अंग्रेजों ने नेपालियों की वीरता को पहचाना और तभी से गोरखा सैनिक अंग्रेजी सेना में भर्ती किए जाने लगे।

अध्याय सातवां

भीमसेन थापा

ललिता त्रिपुरा सुन्दरी के शासनकाल में तथा भीमसेन थापा के मन्त्रित्वकाल में नपाल ने शक्ति प्राप्त की और विकास किया। उस तीस वर्ष के लम्बे काल के नीचे लिखे कारण महत्वपूर्ण थे। (१) भीमसेन थापा की बढ़ती हुई शक्ति और असीम सत्ता (२) थापा और पांडे परिवारों में पतृक शत्रुता। इस शत्रुता का नेतृत्व दामोदर पांडे के एक पुत्र रनजंग पांडे ने किया जिसको १८०७ में भीमसेन ने छोड़ दिया था। (३) महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह की दोनों महारानियों की आपसी ईर्षा और कलह। (४) भीमसेन थापा के छोटे भाई रनवीरसिंह थापा का विश्वासघात। तथा (५) काठमांडू के प्रभावशाली तथा शक्तिशाली ब्राह्मणों का असंतोष। इस सारे संघर्ष में केवल भीमसेन थापा का भतीजा मातवरसिंह थापा ही एक ऐसा व्यक्ति था जो निष्ठा और साहस के साथ अपने चाचा के साथ रहकर उसकी सहायता करता रहा। वह उस गंद कीचड़भरे तालाब में शुद्ध और स्वच्छ जल की भांति पवित्र था। रनजंग पांडे और रनवीरसिंह थापा ने इस समस्त षड्यन्त्र में घृणित काम किए जिन्हें देखकर लज्जा को भी लज्जा आती।

नेपाल की राजधानी काठमांडू में सत्ता और शक्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग था और वह था महत्वाकांक्षी व्यक्ति को रुधिर में स्नान करके आगे बढ़ना। भीमसेन थापा ने भी रुधिर में स्नान किया था और जब वह शक्तिवान बन गया तो वह सतत् सावधानी रखता था। काठमांडू में शक्ति को बनाए रखने के लिए सतत सावधानी की आवश्यकता थी। प्रत्येक सत्तावान व्यक्ति को यह मूल्य चुकाना ही पड़ता था परन्तु यह मूल्य भी कम था।

१८१६ में महाराजा गिरवान युद्धविक्रम चेचक से मर गए। वह स्वयं अल्पवयस्क थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनका बालक पुत्र राजेन्द्रविक्रम शाह सिंहासन पर बैठा। बालक महाराजा की सौतेली दादी महारानी त्रिपुरा सुन्दरी शासिका (रिजेंट) थी और भीमसेन थापा प्रधानमन्त्री था। भीमसेन थापा की शक्ति अपरिमित थी। वही देश का वास्तविक शासक था। कोई उसकी शक्ति को चुनौती देनेवाला नहीं था। सब उससे भयभीत रहते थे। वह नेपाल का सर्वशक्तिशाली शासक था। भीमसेन थापा ने अपने शासनकाल में नेपाल का निर्माण किया। उसने विभिन्न तरीकों से नेपाल की आय में वृद्धि की। उसने एक शक्तिशाली सेना का निर्माण किया। उसने केवल सेना की संख्या ही दस हजार से पन्द्रह हजार नहीं बढ़ाई सेना के लिए उत्तम अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सैनिक सामग्री की व्यवस्था भी की और सैनिक वर्कशाप स्थापित किया जिससे आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के समय ४५ हजार सेना को भी युद्ध सामग्री उपलब्ध की जा सके। नगर के पूर्व में उसने तुन्दीखेल नामक विस्तृत परेड भूमि बनाई जहां सैनिकों के लिए बैरकें बनाई गई, शस्त्रागारों का निर्माण कराया गया और सैनिक वर्कशाप खड़े किए गए। वहीं तोपों के निर्माण

की व्यवस्था भी की गई ।

सच तो यह है कि भीमसेन थापा ने प्रशासन को व्यवस्थित किया और नेपाल की शक्ति को बढ़ाया । उसकी शक्ति और प्रभाव अपरिमित था । वास्तव मे प्रधानमंत्रियों की सर्वोच्च सत्ता का आरम्भ भीमसेन थापा ने किया । बाद को राणाओं ने उस सूत्र को और भी अधिक मजबूत कर दिया ।

सिगोली की संधि के कारण १८१६ से नेपाल मे अंग्रेजी रेजीडेंट आ गया था किन्तु भीमसेन थापा अंग्रेजी रेजीडेंट का विश्वास नहीं करता था । अंग्रेज क्रमशः समस्त भारत पर छा गए थे । एक एक करके सारे हिन्दुस्तान के स्वतंत्र देशी राज्यों पर अंग्रेजों का अधिकार होता जा रहा था । फिर नेपाल में सत्ता प्राप्त करने के लिए यों ही षडयन्त्र होते रहते थे । फिर भीमसेन थापा का साम्राज्यवादी अंग्रेजों से सशंक रहना स्वाभाविक ही था । परन्तु अपने अन्तिम वर्षों मे वह ब्रिटिश रेजीडेंट हाजसन पर विश्वास करने लगा था और ब्रिटिश रेजीडेंट उसका मित्र बन गया था ।

१८३२ मे महारानी त्रिपुरा सुन्दरी की मृत्यु हो गई । वह योग्य, दूरदर्शी और स्थिर तथा दृढ़ बुद्धिवाली शासिका थी । भीमसेन थापा पर उसका गहरा भरोसा और विश्वास था । वह उसका प्रिय था । महारानी त्रिपुरा सुन्दरी जब तक जीवित थी उस दिन तक भीमसेन थापा की शक्ति अपरिमित थी । उसकी स्थिति सुरक्षित थी । कोई उसको चुनौती नहीं दे सकता था । किन्तु त्रिपुरा सुन्दरी के मरने के उपरान्त उसके शत्रुओं की शक्ति और संख्या बढ़ने लगी ।

नेपाल एक सैनिक राष्ट्र था । वहां के प्रभावशाली व्यक्ति सैनिक-शक्ति मे विश्वास करते थे । नेपालियों को यह भय था कि अंग्रेज भारत के अन्य राज्यों की भांति नेपाल को भी हड़प लेंगे । अस्तु अंग्रेजों से नेपाली सशंक और भयभीत थे । साथ ही वे ब्रिटिश भारत के समीपवर्ती सीमा प्रदेश में घुसपैठ कर अपने राज्य का विस्तार करने को भी इच्छुक थे । नेपाली सैनिक वीर थे । उनकी युद्ध करने की परम्परा बन गई थी । पृथ्वीनारायनशाह के समय से उनकी युद्ध करने की प्रवृत्ति बन गई थी । वे युद्ध के द्वारा राज्य-विस्तार और युद्ध की लूट से लाभान्वित होने के अभ्यस्त हो गये थे । अतएव कोई भी प्रधानमंत्री उनकी इस आकांक्षा की अवहेलना नहीं कर सकता था ।

यही कारण था कि भीमसेन थापा अंग्रेजों से अच्छे सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था । साथ ही वह ब्रिटिश भारत के सीमाप्रदेश के गांवों को धीरे धीरे नेपाल में मिलाने का प्रयत्न करता रहता था । वह कभी एक गांव लेता तो कुछ दिनों बाद दूसरे गांव को ले लेता । जब तक भीमसेन थापा ने अधिक गड़बड़ नहीं की तब तक अंग्रेजों ने नेपाल की ओर ध्यान नहीं दिया । परन्तु जब नेपाल ने बहुत अधिक भूमि पर कब्जा करना शुरू कर दिया तो अंग्रेजों से युद्ध हुआ ।

यह दुर्भाग्य की बात थी कि आरम्भ से ही भीमसेन थापा ने अंग्रेजों से छेड़छाड़ शुरू कर दी । नेपाल के सैनिक-वर्ग के समान वह भी अंग्रेजों से गहरी घृणा करता था । किन्तु उसने अंग्रेजों की शक्ति और साधनों का गलत अनुमान लगाया । १८१४ मे गोरखपुर जिले पर आक्रमण करके उसने भूल की । यदि वह अंग्रेजों से छुटपुट संघर्ष भर करता रहता तो नेपाल में यह समपर्क-दल भी संतुष्ट रहता और अंग्रेजों से बड़ा युद्ध भी न लड़ना पड़ता ।

साथ ही अंग्रेजों से संघर्ष करते रहने का परिणाम यह तो होता ही कि अंग्रेजों को नेपाल पर अपना प्रभुत्व जमाने का साहस ही नहीं होता। अंग्रेजों को दूर रखने के लिए बहुत बड़े युद्ध की आवश्यकता नहीं थी।

भीमसेन थापा के घोर शत्रु पांडे परिवार तथा प्रभावशाली ब्राह्मण वर्ग अंग्रेजों का घोर विरोध करते थे। यदि भीमसेन थापा अंग्रेजों की ओर अधिक झुकता तो उसका देश में गहरा विरोध होता। अस्तु अंग्रेजों का विरोध तो उसको करना ही था किन्तु वह बड़े युद्ध को टाल सकता था। यही कारण था कि बाद को भीमसेन अंग्रेजों से संघर्ष तो करता रहा परन्तु उसने कोई बड़ी लड़ाई की नौबत सिगौली की संधि के बाद नहीं आने दी।

भीमसेन थापा चतुर राजनीतिज्ञ भी था। सिगौली की संधि के उपरान्त उसने बड़ी चतुराई से हेस्टिंग्ज को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि तराई का वह प्रदेश जो पूर्व में गंडक नदी और पश्चिम में घाघरा नदी के बीच में पड़ता था इस प्रदेश के बदले में ईस्ट इंडिया कम्पनी नेपाल को प्रतिवर्ष बीस हजार पौंड देगी। भीमसेन ने हेस्टिंग्ज पर यह प्रभाव डाला कि नेपाल के महाराजा बालक हैं उनकी अल्पवयस्कता के काल में हुई संधि स्थायी नहीं होगी। नेपालियों को यह बात नहीं भूलेगी कि उनकी तराई का प्रदेश उनसे छिन गया। अस्तु अंग्रेज यदि नेपाल से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि सिगौली की संधि स्थायी हो तो उन्हें तराई का प्रदेश वापस कर देना चाहिए। हेस्टिंग्ज ने नेपाल को तराई का प्रदेश वापस कर दिया। उस प्रदेश के लिए नेपाल को ईस्ट इंडिया कम्पनी से जितनी वार्षिक रकम मिलती थी उससे चार गुनी से अधिक आय मिलने लगी। यद्यपि यह समझौता एकपक्षीय था। अर्थात् उससे केवल नेपाल को ही लाभ था किन्तु इसका यह परिणाम अवश्य हुआ कि नेपाल का रुख अंग्रेजों की तरफ कुछ नरम हुआ। इतना होने पर भी अंग्रेज रेजीडेंट से नेपाल सरकार कोई सम्बन्ध नहीं रखती थी। उसका एक प्रकार से बहिष्कार होता था और उसके लिए नेपाल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के सभी स्रोत बन्द थे। बात यह थी कि उस समय अंग्रेज मराठों पिंडारियों और बर्मा से युद्ध में फंसे हुए थे। भीमसेन बड़ी सावधानी से स्थिति का अध्ययन कर रहा था। साथ ही वह सैनिक तैयारियां भी कर रहा था तथा सिगौली की संधि की अवहेलना करता था।

भीमसेन ने उस समय अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की। उसे सेना तथा प्रशासन के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। उसने धनी ब्राह्मणों को जो राज्य से धन मिलता था वह छीन लिया। उनके लिए जो कोष या जागीरें थीं वह ले लिए गए। ब्राह्मण प्रभावशाली थे। भीमसेन थापा के पैतृक शत्रु पांडे परिवार के ये सगे और जाति बिरादरी के थे। अतएव पांडे परिवार और ब्राह्मण-वर्ग उसके घोर शत्रु हो गए। उसी समय कुछ समय के उपरांत भीमसेन थापा की हितैषिणी बुद्धिमती महारानी त्रिपुरा सुन्दरी का स्वर्गवास हो गया। अब भीमसेन थापा पर कोई अंकुश नहीं रहा। वह निरंकुश हो गया। उस समय महाराजा विक्रम की ज्येष्ठ रानी ने पांडे तथा ब्राह्मणों का पक्ष लिया और छोटी महारानी भीमसेन थापा तथा थापा परिवार के साथ हो गईं। एक वर्ष उपरान्त महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह बालिग हो गए। शासनाधिकार उनके हाथ में आ गया। युवा अवस्था में भोग विलास में डूबा हुआ महाराजा भीमसेन थापा द्वारा उसका दबाया जाना सहन

नहीं कर सकता था । उसे अपने प्रधानमन्त्री भीमसेन का उस पर अंकुश और प्रभाव बहुत अखरने लगा । वह भीमसेन के प्रभाव और शक्ति को कम करना चाहता था । वह चाहता था कि भीमसेन को नीचा दिखलाया जावे और उसकी शक्ति को समाप्त कर दिया जाये । अस्तु वह भी बड़ी महारानी के कारण पांडे तथा ब्राह्मण दल की ओर झुक गया । पांडे दल का नेता रनजग पांडे था जो दामोदर पांडे का पुत्र था । रणजग पांडे के नेतृत्व में पांडे परिवार के वे सभी उत्तराधिकारी संगठित हो गए जिन पर प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा के १८०४ और १८०७ मे अत्याचार हुए थे । महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह केवल भीमसेन थापा की शक्ति को कम करना चाहता था । रनजग पांडे अपने पिता दामोदर पांडे का बदला चुकाना चाहता था जिसको भीमसेन थापा ने निर्दयतापूर्वक मरवा दिया था । ब्राह्मण अपनी जागीरें, धन और कोष पुनः प्राप्त करना चाहते थे और भीमसेन थापा की अवनति देखना चाहते थे क्योंकि उसने ही उनके धन को जब्त कर लिया था । बड़ी महारानी छोटी महारानी तथा उनके समर्थक भीमसेन के प्रभाव तथा शक्ति को नष्ट करना चाहती थी । परन्तु किसी का भी यह साहस नहीं होता था कि वह भीमसेन थापा का खुलकर विरोध करे । वे सब के सब गुप्त रूप से भीमसेन को पकड़ कर उसे अपमानित कर उस पर अत्याचार करके उसको मारने का षडयन्त्र कर रहे थे ।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि उस समय महाराजा की स्थिति अत्यन्त दयनीय और असहनीय थी । वह एक प्रकार से सम्मानित कैदीमात्र था । जो स्थिति बाद को राणाओं के काल मे नपाल नरेश की हुई यह उसका पूर्वाभास था । ब्रिटिश रजीडेंट हाजसन ने अपनी सरकार को इस सम्बन्ध में लिखा था राजा अपने महल मे बन्द रहता है । उसके बाहर वह बिना मन्त्री को साथ लिए नहीं जा सकता । वह भी थोड़ी दूर घोड़े पर सवार होकर अथवा गाड़ी में घूमने जा सकता है । उसके महल में ही प्रधान मन्त्री तथा उसका भाई भी रहते हैं । प्रधानमन्त्री का भाई महाराजा के संरक्षक के रूप में रहता है । गत वर्ष महाराजा ने पहाड़ियों मे शिकार खेलने की इच्छा प्रकट की किन्तु उसको अनेक प्रकार की व्यय की फिजूलखर्चियाँ तथा कठिनाइयां बता कर रोक दिया गया । इस वर्ष वह नवकोट के महल मे जाकर कुछ दिन रहना चाहता था जहां उसका पिता शीतकाल म जाकर रहता था । परन्तु इस बार भी उसे रोक दिया गया । जहां शक्ति का प्रश्न है उसके पास किंचितमात्र भी शक्ति नहीं है और न वह किसी को कुछ दे ही सकता है । भीमसेन के आदमी उसको इस प्रकार घेरे रहते हैं कि वह अपने महल में भी एक कैदी की भांति रहता है । न वह कहीं जा सकता है और न अपने सरदारों या प्रजा से मिल ही सकता है ।

ज्येष्ठ महारानी को महाराजा की यह दासता अखरती थी और महाराजा की इस कायरता से क्रुद्ध होकर उसने अपने मित्रों और सहायकों से अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया कि वह या तो महाराजा को विवश करेगी कि वह अपनी व्यक्तिगत तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करे और अपने अधिकार प्राप्त करे अथवा स्वयं दो पुत्रों की जननी होने के कारण नपाल का शासन महाराजा के नाम से स्वयं करने का दावा करेगी ।

इस प्रकार जब ज्येष्ठ महारानी ने महाराजा को लगातार उकसाया

तो महाराजा ने अधिकार और शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया। किन्तु प्रधानमन्त्री ने तरुण महाराजा को उसके अधिकारों को कम करने तथा अपने अधिकारों को बढ़ाने के प्रयत्नों को विफल कर दिया। महारानी को भीमसेन थापा के विरुद्ध महाराजा को उभारने का अवसर मिल गया। अब उसका पति तरुण महाराजा विरोधियों अर्थात् पांडे तथा ब्राह्मणों के पक्ष में हो गया। महारानी ने भीमसेन थापा के विरुद्ध प्रकट रूप से अपना असन्तोष और क्रोध व्यक्त किया और प्रधानमन्त्री पर दोषारोपण किया। परन्तु तरुण महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह उस समय भी अपने मन्त्री का विरोध करने का साहस न कर सका। साधारण जनता को यह आशा नहीं थी कि महारानी प्रधानमन्त्री का इस प्रकार खुला विरोध करने का साहस करेगी। तरुण महाराजा मन में तो अपने प्रधानमन्त्री से अत्यन्त क्षुब्ध था परन्तु प्रकट रूप में अपने उस प्रभावशाली कर्मचारी का विरोध करने का साहस नहीं बटोर पाता था। ज्येष्ठ महारानी उसको उभार रही थी परन्तु उस समय उसने कुछ भी करने का साहस नहीं किया। वह वार्षिक 'पजनी समारोह' की प्रतीक्षा करता रहा। पजनी समारोह प्रति वर्ष होता था। परम्परा के अनुसार उस दिन सभी सार्वजनिक राजकीय पद और उसके अधिकार महाराजाधिराज नेपाल नरेश को सौंप दिए जाते थे और महाराजाधिराज या तो पुराने व्यक्तियों को पुनः उसी पद पर नियुक्त कर देता था अथवा नए अधिकारियों को नियुक्त करता था। उस दिन उसने भीमसेन थापा को प्रधानमन्त्री नियुक्त करना अस्वीकार कर दिया। जीवन में प्रथम बार महाराजा ने अपने प्रभावशाली और असीम शक्तिवान प्रधानमन्त्री के विरुद्ध अपने अधिकार का प्रदर्शन किया। यद्यपि कुछ ही दिनों के उपरान्त अनिवार्य आवश्यकता के कारण भीमसेन थापा को उसे पुनः बुलाना पड़ा।

अपने प्रधानमन्त्री की अवहेलना करके तरुण महाराजा ने १८३८ में महाराजा रणजीतसिंह से एक गुप्त समझौता कर लिया। उधर उसने एक दूत गुप्त रूप से तेहरान भेजा जहां से वह यह पता लगाए कि रूस का भारत पर सम्भावित आक्रमण कब होगा तथा वहां सम्बन्ध स्थापित करे। ब्रिटिश रजीडेंट को महाराजा की इन दुरभिसंधियों का पता था। उसका कारण यह था कि भीमसेन थापा का यह विश्वासपात्र बन गया था। सम्भवतः उसके द्वारा ही उसे महाराजा की इन दुरभिसंधियों का पता चलता था। उस समय जब कि ब्रिटिश सरकार सिखों से युद्ध में फंसी हुई थी और रूस के आक्रमण का भय सिर पर सवार था नेपाल की ओर से यह बहुत अधिक सशंक था। १८४० से १८५७ तक अंग्रेज नेपाल को शंका और भय की दृष्टि से देखते थे। १८५७ के स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध में जब कि भारत में अंग्रेजों के पैर उखड़ गए थे उस समय जब नेपाल ने अंग्रेजों का साथ दिया तब जाकर अंग्रेज नेपाल की ओर से आश्वस्त हुए।

उस समय अंग्रेज विरोधी पांडे दल का महाराजा पर अधिक प्रभाव हो गया था इस कारण पुनः नेपाल ने ब्रिटिश भारत की सीमा पर स्थित गांवों पर धीरे धीरे अधिकार करना आरम्भ किया। अंग्रेज सरकार उस समय चुप रही क्योंकि परिस्थिति उसके प्रतिकूल थी।

भीमसेन आने वाली विपत्ति और खतरे का आभास कर रहा था। उसने ब्रिटिश रजीडेंट का समर्थन और संरक्षण चाहा। वह ब्रिटिश रजीडेंट से

मिल गया। गुप्त बातें उस पर प्रकट करने लगा। ब्रिटिश रजीडेंट उसका मित्र बन गया। भीमसेन थापा यद्यपि बहुत बड़े खतरे का सामना कर रहा था परन्तु उसके इस काय का कोई भी दस्तावेज समर्थन नहीं कर सकता। भीमसेन थापा ने ब्रिटिश रजीडेंट को यह भी चेतावनी दी कि अक्तूबर में यदि नपाल के महाराजा को यह ज्ञात हुआ कि लाहौर पकिंग तथा आवा के समाचार अनुकूल हैं तो वह अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। युद्ध का समर्थक-दल ब्रिटिश रजीडेंट को नपाल से तुरन्त निकालबाहर करने के लिए महाराजा पर जोर डाल रहा था। यद्यपि ब्रिटिश रजीडेंट हाजसन को अपने जीवन का खतरा था किन्तु वह तनिक भी भयभीत न हुआ और काठमांडू मे डटा रहा। मन्त्रियों में उसके मित्र विश्वासघाती मंत्रियों ने उसे बतलाया कि महाराजा ने अपना एक दूत सिक्किम और आसाम के रास्ते बर्मा भेजा है और वह अत्यन्त गुप्त रूप से भारत के उदयपुर जोधपुर, ग्वालियर हैदराबाद मराठों सिक्खों पकिंग (चीनियों), काबुल (अफगानिस्तान) तथा तेहरान (ईरान) से अंग्रेजों के विरुद्ध सधि-चर्चा कर रहा है। हाजसन जानता था कि उसकी रक्षा करने के लिए भारत से सेना नहीं आ सकती थी परन्तु उसने यह तनिक भी प्रकट नहीं होने दिया कि वह भयभीत है। वह दरबार म उसी गहर और शान के साथ जाता और व्यवहार करता मानो उसके पीछे असीम ब्रिटिश शक्ति है। उसन सोचा कि पांडे दल की शक्ति को कम करने का एक उपाय यह हो सकता है कि गोरखा सनिकों को अधिक से अधिक अंग्रेजी सेना में भरती किया जाये। उसने अपनी सरकार को लिखा कि हमें खास मगर, तथा गुरंग जाति के गोरखा वीरों को अधिक से अधिक संख्या मे अपनी सेना में भरती करना चाहिये उसका परिणाम यह होगा कि नपाल की सनिक-शक्ति कम होगी और नपाल के सनिक-वर्ग मे जो राज्यविस्तार की लालसा जागृत हो उठी है और जो नपाली युद्ध करने के लिए तत्पर हैं वे मन्द पड़ जावेंगे। इसके अतिरिक्त उसने नपाल से भारत और तिब्बत के बीच एक व्यापारिक मार्ग बनाने की योजना तयार की। उसका परिणाम यह हुआ कि नपाल का व्यापार बढ़ा।

उसके उपरान्त उसने नपाल और अवध की सीमा निर्धारण की ओर ध्यान दिया। बात यह थी कि १८१६ की सधि के अनुसार तराई का प्रदेश अवध को दे दिया गया किन्तु बाद को भीमसेन थापा की प्राथना पर पश्चिमी तराई का भाग पुन नपाल को वापस मिल गया था। इस कारण सीमा निर्धारण आवश्यक हो गया था। नपाल के प्रधानमंत्री ने यह स्वीकार कर लिया कि अंग्रेज अधिकारी की अध्यक्षता म एक सीमा-आयोग सीमा निर्धारण करे जिसम नपाल और अवध क प्रतिनिधि हों। १८३३ में सीमा निर्धारण का काय समाप्त हुआ और सभी पक्षों ने उसको स्वीकार कर लिया। इस प्रकार नपालियों द्वारा सीमा-अतिक्रमण का एक कारण दूर हो गया।

रजीडेंट पिछले कुछ समय से यह प्रयत्न कर रहा था कि भारत और नपाल म व्यापारिक-संधि हो। उसने जो प्रस्ताव रक्खा उसको भीमसेन थापा ने तो स्वीकार कर लिया परन्तु भारत सरकार ने उस अस्वीकार कर दिया। रजीडेंट हाजसन तथा भीमसेन थापा एक दूसरे क नजदीक आ गए थे। हाजसन ने भीमसेन थापा की मृत्यु क उपरान्त उसकी जसी चुने शब्दों म प्रशसा की थी वह उसकी भीमसेन थापा क प्रति सच्ची अभिव्यक्ति थी। यह स्पष्ट

था कि वह पिछले वर्षों में भीमसेन का प्रशंसक और मित्र बन गया था। १८०४ और १८०७ के खूनी संघर्ष और अंग्रेजों के विरुद्ध प्रारम्भिक षड्यन्त्र के बाद खुद भी हाजसन ने भीमसेन थापा को अन्तिम वर्षों में अपना मित्र बना लिया था।

महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह अपनी ज्येष्ठ महारानी तथा ब्राह्मणों से प्रोत्साहन पाकर भीमसेन थापा से असंतुष्ट होकर उससे मतभेद और विरोध प्रकट करने लगा। जैसे-जैसे महाराजा और भीमसेन के संबंध बिगड़ने लगे वैसे ही वैसे भीमसेन के शत्रु पांडे लोग बड़ी महारानी के साथ अधिक घनिष्ठ होते गए। भीमसेन थापा का विश्वासघाती छोटे भाई रणवीरसिंह ने देखा कि शक्ति प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर है वह महारानी तथा पांडों से मिलकर षड्यंत्र में सम्मिलित हो गया और उसने प्रधान सेनापति का पद प्राप्त कर लिया। प्रधान सेनापति बनकर उसने निर्बल किन्तु अहंकारी महाराजा को अपने बड़े भाई को पद से हटाकर उसे प्रधानमंत्री बनाने को तयार कर लिया। जब भीमसेन थापा के विरुद्ध यह सब षड्यंत्र चल रहे थे तब प्रधानमंत्री का भतीजा माथवरसिंह उसकी सहायता और समर्थन के लिए उसके साथ हो गया। माथवरसिंह अत्यन्त वीर, कुशल सेनापति सेना का अत्यन्त प्रिय, साहसी प्रभावशाली और जिद्दी था। पांडे गण ने अब अपने प्रयत्नों को तीव्र प्रबल की। उन्होंने अपने वीर और देशप्रिय पूर्वज दामोदर की जो देश में प्रतिष्ठा थी उसका उपयोग किया। यद्यपि दामोदर पांडे को मरे हुए तीस वर्ष से अधिक हो गए थे परन्तु सर्वसाधारण उसको भूला नहीं था। नेपाल का सर्वसाधारण उसको सम्मानपूर्वक याद करता था। पांडे परिवार ने महाराजा राजेन्द्रविक्रम शाह से अपने परिवार की जागीर और प्रतिष्ठा को पुनः वापस देने का आग्रह किया और यह मांग की कि जिस प्रधानमंत्री ने उनके परिवार को नष्टप्राय कर दिया उसको पद से हटाया जाय। महाराजा के सामने अब केवल दो विकल्प थे। उसे भीमसेन थापा तथा उसके विरुद्ध षड्यंत्र करनेवालों में एक को चुनना था। फिर भी महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह हिचक रहा था। यद्यपि वह भीमसेन थापा से घृणा करता था उसका सर्वनाश करना चाहता था, किन्तु वह उससे भयभीत था।

षड्यंत्रकारियों ने देखा माथवरसिंह के कारण भीमसेन शक्तिशाली है। उन्होंने माथवरसिंह को नीचे गिराने का प्रयत्न किया। उस पर यह दोषारोपण किया गया कि उसने अपनी विधवा मामी को भ्रष्ट कर दिया, उसके साथ बलात्कार किया। हिन्दू राजपूतों में यह अक्षम्य अपराध माना जाता था किन्तु इस दोषारोपण को सिद्ध नहीं किया जा सका क्योंकि यह असत्य था। फिर भी जिस व्यक्ति ने दोषारोपण किया था उसके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं की गई।

१७९२ की संधि के अनुसार १८३७ में नेपाल से पंचवर्षीय प्रतिनिधि मंडल तथा भेंट पीकिंग को जाती थी। भीमसेन को प्रतिनिधि-मंडल में जाने वाले लोगों का चुनाव करना था। परन्तु इस बार महाराजा राजेन्द्र विक्रमशाह ने इस बात पर बल दिया कि यह अधिकार उसका है। अपने अधिकार का आग्रह करके उसने स्वयं प्रतिनिधि मंडल नियुक्त किया। भीमसेन थापा की प्रतिष्ठा को इतना अधिक गिरा दिया था सो वह साहस न कर सका कि वह उसके शत्रु पांडे को उसका नेता मनोनीत करता। अस्तु उसने अपने एक

चचेरे भाई को उसका नेता बनाया। परन्तु उससे प्रधानमन्त्री का महत्व और प्रभाव गिरने लगा। प्रधानमन्त्री का प्रभाव और शक्ति कम होने लगी और थापा परिवार की प्रतिष्ठा का मान गिरने लगा क्योंकि उस प्रतिनिधि मंडल मे उनके विरोधियों को स्थान दिया गया था। ब्राह्मणों ने महाराजा पर दबाव डालकर अपने एक आदमी को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करवा लिया। पांडे परिवार की जागीर, सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा जिसे भीमसेन थापा ने छीन लिया था रणजंग पांडे ने महाराजा से पुन प्राप्त करली। गोरखा प्रान्त के गवनर (शासक) पद से माधवसिंह को हटा दिया गया और दामोदर पांडे के एक दूसरे पुत्र को गोरखा प्रान्त का गवनर (शासक) नियुक्त किया गया। किन्तु भीमसेन थापा को पद से हटाने का साहस नहीं हुआ। महाराजा और अन्य सभी लोग उससे भयभीत थे।

इस समय का कुछ समय के उपरान्त नाटकीय ढग से पटाक्षेप हुआ। भीमसेन थापा की घोर शत्रु बड़ी महारानी के सबसे छोटे पुत्र की मृत्यु हो गई। पांडे परिवार ने यह अफवाह फैला दी कि भीमसेन थापा ने बड़ी महारानी को विष देकर मार डालने का षडयन्त्र किया था किन्तु षडयन्त्र सफल नहीं हुआ। वह विष लड़के ने पी लिया। राजधानी में इस काण्ड को लेकर भूचाल आ गया। षडयन्त्र अपनी चरम सीमा पर पहुच चुका था। रणजंग पांडे ने महाराजा राजेन्द्रविक्रम के कान भरने आरम्भ किए कि यही समय है कि जब भीमसेन थापा पर वार किया जा सकता है। सेना तथा जनता उसका साथ नहीं देगी। महाराजा ने उसकी बात मानकर भीमसेन थापा को प्रधानमन्त्री पद से हटाकर अपमानित कर जेल में डाल दिया। माथबरसिंह को भी कैद कर उसे चाचा के साथ जेल मे रख दिया गया। रणजंग पांडे प्रधानमन्त्री बना। अब वह भीमसेन से बदला लेना चाहता था। भीमसेन के विरुद्ध गवाही की जरूरत थी। पांडे उसके विरुद्ध गवाही प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। उसने वैद्यों पर अत्याचार करना आरम्भ किया। उनमें से एक वैद्य न अत्याचार से घबड़ाकर स्वीकार किया और झूठा बयान दे दिया कि भीमसेन थापा ने उसको विष देने की आज्ञा दी थी। भविष्य में वह अपना बयान न बदल सके इस उद्देश्य से उस वैद्य को मरवा डाला गया। एक दूसरे को गरम लोहे से माथे पर जलाया गया जिससे उसका भेजा खुल गया और गाल पर तब तक जलाया गया जब तक कि हड्डी न दिखाई पड़ने लगी। एक नेवार को छाती में गहरा चीरा लगाया गया। उसको काटा गया परन्तु उस बयान का समथन करनेवाला कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं मिला। महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह इस भयंकर अत्याचार को देख रहा था किन्तु बोला नहीं। लन्दन मे लिखा है कि उस घटना के चार वर्ष उपरांत पांडे लोगों ने यह स्वीकार किया कि भीमसेन थापा पर वह मिथ्यारोपण था, उसमें कोई सच्चाई नहीं थी।

जब भीमसेन थापा का पराभव हुआ तो उसके विश्वासघाती भाई रणबीरसिंह थापा को भी प्रधान सेनापति के पद से हटाकर कैद कर दिया गया। अब सभी राज्य-कर्मचारी भयभीत हो उठे। रणजंग पांडे ने ऐसे सभी अधिकारियों को पद से हटा दिया और अपमानित किया जिनको भीमसेन थापा के प्रति थोड़ी भी सहानुभूति थी। उसने उन सभी जमीनों को जो कि उसके पिता के बाद तीस वर्षों के भीतर बिना मालगुजारी के दी गई थीं अर्थात् जिन

पर मालगुजारी माफ थी, छीन लिया । उसने सामन्तों और सरदारों से जबरदस्ती धन वसूल करना आरम्भ किया । एक एक सामन्त से अस्सी हजार पौंड तक जबरदस्ती ऋण वसूल किया गया । चौतरिया सामन्तों ने अंग्रेजों और महाराजा से विरोध किया । जब महाराजा ने देखा कि दरबार के सभी लोग विरोध कर रहे हैं तो उसने रणजंग पांडे को पदच्युत कर दिया । अब रघुनाथ पांडे प्रधानमन्त्री बना । वह नितान्त प्रभावहीन और शून्य था । छोटी रानी लक्ष्मीदेवी ने हस्तक्षेप किया और भीमसेन थापा और माथवरसिंह को छोड़ दिया गया । उनके छूटने पर सेना में प्रसन्नता की लहर फैल गई । सेना ने अपनी प्रसन्नता और हर्ष का खूब ही प्रदर्शन किया । महाराजा ने देखा कि सेना पर थापा का बहुत प्रभाव है । अस्तु सेना पर से थापा का प्रभाव हटाने के लिए तथा रणजंग को सतुष्ट करने के लिए महाराजा ने रणजंग पांडे को प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया । रणजंग पांडे ने थापा का सेना पर से प्रभाव समाप्त हो इसका प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया ।

माथवरसिंह ने अनुकूल अवसर देखकर देश छोड़ दिया । वह लाहौर में महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में गया । सम्भवत: वह महाराजा रणजीतसिंह की अपने पक्ष में सहायता प्राप्त करने के लिए गया हो परन्तु वह सफल नहीं हुआ । उधर भीमसेन थापा का छोटा भाई विश्वासघाती रणवीर सिंह प्रायश्चितस्वरूप एक साधु की तरह काशीवास करने चला गया और भीमसेन थापा राजनीति से अलग हो एक नागरिक का जीवन व्यतीत करने लगा ।

सनकी महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह अब अपने प्रभावहीन प्रधानमन्त्रियों के द्वारा शासन करने का प्रयत्न करने लगा । एक के बाद दूसरा प्रधानमन्त्री बदलता । १८३९ में महत्त्वाकांक्षी रणजंग पांडे ने पुन: प्रधानमन्त्रित्व को प्राप्त कर लिया । इस बार उसने अपने पुराने शत्रु से बदला लेने का पूरा निश्चय किया था । उसने दो वर्ष पहले का विष देने का अभियोग भीमसेन पर पुन: चलाया मुकद्दमे का नाटक किया गया, और पुन: उस महान् राजनीतिज्ञ को जेल में डाल दिया गया । भीमसेन थापा को तहखाने की अत्यन्त नम, गंदी, अंधेरी वायुरहित कोठरी में रक्खा गया । उन कायरों को उस समय भी यह साहस नहीं हुआ कि उसको मृत्युदण्ड दे देते । रणजंग पांडे ने यह आज्ञा दे दी कि भीमसेन के साथ ऐसा क्रूर तथा नृशंस और अपमानजनक व्यवहार किया जावे कि वह निराश होकर आत्महत्या करले । इसी उद्देश्य से उसके पास एक छुरकी रख दी गई थी फिर भी भीमसेन दृढ़ता से सहता रहा किन्तु उसने आत्महत्या नहीं की । जब उसके शत्रुओं ने देखा कि वह सब कुछ सहन करके भी दृढ़ है तो उसके पास यह खबर भेजी कि उसकी पत्नी को नंगा करके दिन में काठमांडू की सड़कों पर चलने को विवश किया गया है । इस खबर ने उसके दिल को तोड़ दिया । उसने छुरकी से अपने गले को काट दिया । ९ दिन तक वह सिसकता रहा । २९ जुलाई १८३९ को उसकी मृत्यु हो गई । नेपाल के एक अत्यन्त बहादुर और राजनीतिज्ञ का इस प्रकार दुखद अन्त हुआ । ब्रिटिश रजीडेंट ने अपनी सरकार को जो सूचना भेजी उसका सारांश यह है—

"भीमसेन थापा के शव का अग्नि-संस्कार नहीं होने दिया गया । उसके शव के टुकड़े टुकड़े कर उसका नगर में प्रदर्शन किया गया और उसके उपरान्त उसके शव के टुकड़ों को नदी के किनारे फेंक दिया गया जहां कुत्तों और गिद्धों ने उसको खाया ।

इस प्रकार नेपाल के उस योग्य वीर और महान् शासक का दुखद अन्त हुआ जिसने तीस लम्बे वर्षों तक नेपाल पर किसी नरेश से अधिक प्रभावपूर्ण शासन किया। उसको अपने सभी राजनीतिक कार्यों में जो एकसमान आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई वह उसकी कार्यक्षमता तथा बुद्धिमत्ता के अनुरूप ही अनोखी थी। मैं वर्तमान में महाराजा रणजीतसिंह के अतिरिक्त किसी अन्य भारतीय को नहीं जानता जिसकी तुलना नेपाल के जनरल भीमसेन थापा से की जा सके।

अध्याय आठवां

नैपाल की शोचनीय स्थिति और कोट हत्याकांड

महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह भीमसेन थापा के इस प्रकार मारे जाने से इतना घबड़ा गया कि वह ब्रिटिश रेजीडेंट के पास उस नृशंस कृत्य की सफाई देने के लिए गया। हाजसन ने रूखे ढंग से उसका स्वागत किया और चुप रहा व अधिक बात नहीं की। उसने ब्रिटिश सरकार को अपनी सम्मति लिख भेजी। गवर्नर-जनरल आकलैंड ने हाजसन को लिखा कि उसे अपनी और ब्रिटिश सरकार की इस नृशंस हत्या के सम्बन्ध में नीचे लिखी सम्मति नेपाल नरेश तथा सरकार को बतला देनी चाहिए।

नेपाल सरकार ने राज्य के योग्य और वीर प्रधानमन्त्री के साथ जैसा निर्दयतापूर्ण, अपमानजनक और क्रूर व्यवहार किया है उससे गवर्नर जनरल के मन में अत्यन्त घृणा तथा क्षोभ की भावना उत्पन्न हुई है। ब्रिटिश रेजीडेंट ने उस संदेश को जब व्यक्तिगत साक्षात्कार में महाराजा को बतलाया तो महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह थोड़ा भयभीत हुआ और उसका अपने घर से तथा जो लोग उसके पास थे उन पर से विश्वास हिल गया। वह नए प्रधान मन्त्री रणजंग पांडे तथा उसके सैनिक दल को शंका की दृष्टि से देखने लगा।

उधर प्रधानमन्त्री रणजंग पांडे तथा उसकी सहायक बड़ी महारानी तथा अन्य युद्ध-समर्थक सहायकों ने अपने उद्देश्य के लिए तैयारियां आरम्भ करदीं। राजकीय घोषणा द्वारा मृत प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा तथा उसके परिवारवालों की भूमि तथा जायदाद जब्त करली गई और पिछले पचीस वर्षों में भीमसेन थापा अथवा महारानी त्रिपुरा सुन्दरी ने यदि किसी को भूमि दी वह जब्त करली गई। जब महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह रेजीडेंसी से लौटा तो उसको विवश किया गया कि वह उस राज आज्ञा पर हस्ताक्षर करे कि जिसके द्वारा समस्त थापा जाति को सात पीढ़ी तक राज्य के किसी पद को प्राप्त करने अथवा राज्य की नौकरी कर सकने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था।

रणजंग पांडे समझ गया कि महाराजा उसकी ओर से तथा उसके दल की ओर से उदासीन होने लगा है। अतएव उसने यह आवश्यक समझा कि वह नेपाल को अंग्रेजों से युद्ध करने की नीति को स्वीकार करवा दे। उसने नेपाल की सैनिक शक्ति की एक झूठी गणना करवाई और यह बतलाया कि देश में चार लाख प्रशिक्षित सैनिक हैं। उसने अस्त्र-शस्त्र तथा गोला बारूद बनाने के लिए एक बहुत बड़ा कारखाना स्थापित किया। उसके उपरान्त उसने

ब्राह्मणों की भविष्यवाणी का देश मे खूब प्रचार किया कि शीघ्र ही भारत में अंग्रेजों की सत्ता और शक्ति का अन्त हो जायेगा। फिर भी वे लोग महाराजा को युद्ध की नीति को स्वीकार करने के लिये तयार न कर सके। महारानी तथा रणजंग पांडे यह जान गए थे ब्रिटिश रजीडेंट उनके विरुद्ध है और महाराजा उससे भयभीत और प्रभावित है अतएव उन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर उसे अपमानित कर निकालने की युक्ति सोची। हाजसन भीमसेन थापा का व्यक्तिगत मित्र ही नहीं था वरन् वह युद्ध विरोधी दल का समर्थक और सहायक भी था। अस्तु उसकी दृष्टि में हाजसन को हटाना आवश्यक था। बड़ी महारानी तथा रणजंग पांडे ने बहुत प्रयत्न किया कि हाजसन महल तथा दरबार के षड्यन्त्रों मे फस जाये किन्तु हाजसन सतर्क तथा विवेकशील था। वह दरबार तथा महलों के षड्यन्त्रों मे नहीं फसा। रणजंग पांडे के प्रभाव के कारण भीमसेन के पराभव के उपरान्त पहले ही सीमा पर छुटपुट घुसपैठ होने लगी थी। अब रणजंग पांडे के प्रधानमन्त्रित्व मे सीमा पर अधिक सक्रियता हो गई। नेपाल के सैनिकों ने रामनगर पर आक्रमण किया और उसको लूटा। ब्रिटिश रेजीडेंट हाजसन ने मांग की कि नेपाल सरकार हर्जाना दे, रामनगर से तुरन्त हट जावे और गवनर-जनरल से क्षमा याचना करे। बड़ी महारानी तथा रणजंग पांडे ने ऐसा षड्यन्त्र किया कि बिना उनके उस दुरभिसन्धि में लिप्त हुए ब्रिटिश रजीडेंट की हत्या करदी जावे। २१ जून १८४० को काठमांडू में सेना की परेड बुलाई गई और उन्हें यह आज्ञा सुनाई गई कि भारत सरकार की आज्ञा से उनका वेतन कम कर दिया जायेगा। सैनिक क्षुब्ध होकर ब्रिटिश रेजीडेंट के निवासस्थान रजीडेंसी की ओर कूच कर गए। वहां पहुचकर उनका क्रोध कुछ मंद पड़ा क्योंकि हाजसन नेपाल के सैनिक वर्ग में विशेष प्रिय था। क्रुद्ध सैनिकों ने वहां जाकर कानाफूसी की और विचार विमर्श कर यह निश्चय किया कि इतने बड़े अधिकारी के विरुद्ध कुछ कार्यवाही करने के पूर्व महाराजा से आज्ञा ले लेनी चाहिए। अस्तु वे महल की ओर गए। महारानी ने इससे पहले ही राजधानी छोड़ दी थी और वह राजधानी के बाहर चली गई थी। महाराजा स्वयं घबड़ा गया किन्तु फिर भी उसने महल से बाहर निकलकर सैनिकों से कहा कि उनका वेतन इसलिये घटाया जा रहा है कि उन्हें भारत पर आक्रमण करने के लिये धन चाहिए। महाराजा ने यह कह कर भयंकर भूल की। बात यह थी कि पिछले बीस वर्षों से सैनिकों को युद्ध करने को नहीं मिला था। वे युद्ध और लूट के लिए छटपटा रहे थे। उनके नेताओं ने कहा कि लखनऊ और पटना पर आक्रमण किया जाये और नेपाल राज्य की सीमा का गंगा के तट तक विस्तार किया जाये। परन्तु पहले उन्हें रजीडेंसी पर आक्रमण करना चाहिए और रेंजीडेंट को समाप्त करना चाहिए। परन्तु जब उन्होंने यह मांग की कि उन्हें रजीडेंट को मारने की आज्ञा प्रदान की जावे तो महाराजा का साहस नहीं हुआ। रजीडेंट ने महाराजा से कहलाया कि उसे इस षड्यन्त्र की पहले से ही खबर थी और उसकी सूचना मैंने नेपाल से एक संदेशवाहक के साथ भारत को भिजवा दी। इस षड्यन्त्र की सूचना अब नेपाल से निकलकर भारत के मैदानों मे पहुँच चुकी है। शीघ्र यह सूचना कलकत्ता पहुँच जायेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह षड्यन्त्र असफल हो गया।

लार्ड आकलैंड गवनर-जनरल अब बौखला उठा। उसने रजीडेंट को आज्ञा दी कि वह नेपाल सरकार से कहे कि वह रामनगर से तुरन्त अपने

सनिकों को हटाले अथवा भारत सरकार उनको हटा देगी। साथ ही यह नेपाल सरकार से यह मांग करे कि युद्ध-समर्थक दल को सत्ता और अधिकार से हटा दिया जावे। ब्रिटिश रेजीडेंट हाजसन ने नेपाल सरकार को अल्टीमेटम दिया कि वह तुरन्त रामनगर से अपने समर्थक सैनिकों को हटाले और युद्ध-समर्थकों को पद से हटा दे।

नेपाल के दरबार में इस चुनौती को लेकर घोर मतभेद था। बड़ी महारानी ने रामनगर से तुरन्त चुपचाप अपने सैनिकों को हटा लिया। परन्तु जहां तक युद्ध-समर्थक दल को सत्ता से हटाने का प्रश्न था दरबार में घोर मतभेद था। हाजसन ने उचित अवसर देखकर इस बार जोर दिया कि प्रधान मंत्री रणजंग पांडे को हटा दिया जावे। ब्रिटिश रेजीडेंट को नेपाल के अन्दरूनी मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था परन्तु कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों की यह नीति थी कि जबकि राज्य की स्थिति खराब हो तो कुछ देशद्रोहियों और विश्वासघातियों को साथ लेकर राज्य की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया जावे। भारत के राज्यों के साथ उन्होंने यही किया था और वे उसकी पुनरावृत्ति नेपाल में भी करना चाहते थे। हाजसन को इस प्रकार की मांग करने का कोई अधिकार नहीं था परन्तु उसे नेपाल के एक दरबारी दल का समर्थन प्राप्त था। हाजसन की धमकी का परिणाम यह हुआ कि रणजंग पांडे को हटा दिया गया और एक चौतरिया प्रधानमंत्री बना। उसको अधिकांश ब्राह्मणों भूस्वामियों का समर्थन प्राप्त था जो कि राज्य की अस्त-व्यस्त दशा से ऊब गए थे। राजा ने अपने मन्त्रि-मण्डल में केवल उन्हीं लोगों को लिया जो नेपाल और भारत में मैत्री के समर्थक थे और उसने मन्त्रिमण्डल की सूची हाजसन की स्वीकृति के लिए भेजी। एक प्रकार से ब्रिटिश रेजीडेंट हाजसन नेपाल राज्य का अभिभावक बन गया। नेपाल का महाराजा उसकी स्वीकृति से मन्त्रि-मण्डल चुनने पर विवश हो गया। जब नेपाल की राजनीति में ब्रिटिश रेजीडेंट हाजसन का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया तो उसकी विरोधिनी ज्येष्ठ महारानी ने देश त्याग दिया अथवा यों कहना चाहिए कि उसे देश को छोड़कर जाने पर विवश किया गया। महारानी देश छोड़कर काशीवास करने चली गई। महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह इस सारी घटना से भयभीत और सशंक हो उठा। उसे अपनी सुरक्षा का खतरा दिखाई देने लगा। एक प्रकार से ब्रिटिश रेजीडेंट उस समय नेपाल का सर्वेसर्वा बन गया था। महाराजा भी घबराकर देश छोड़कर महारानी के पीछे-पीछे काशीवास के लिए चल पड़ा।

अंग्रेज गवर्नर-जनरल इस सारी घटना से भयभीत हो उठा। वह जानता था कि महाराजा को दबाकर नेपाल में सब कुछ करवाया जा सकता है। महाराजा की आड़ में अंग्रेज अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं परन्तु महाराजा के न होने पर नेपाल में स्थिति भयावह हो उठेगी और अंग्रेजों को लम्बा युद्ध करना होगा। अंग्रेज नेपाल की सैनिक-शक्ति को जानते थे इस कारण गवर्नर जनरल ने महाराजा और महारानी को भारत में आने का आज्ञा-पत्र (पासपोर्ट) देना अस्वीकार कर दिया। उसने हाजसन को आज्ञा दी कि वह महाराजा को देश न छोड़ने के लिये समझाने को कहा। इस पर महाराजा और महारानी राजधानी को लौट आए। काठमांडू में महारानी का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। जनता ने उसके लौटने पर अपूर्व हर्ष प्रकट किया। इसका परिणाम यह हुआ कि नवीन मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध जनता में रोष उत्पन्न हो गया। नेपाली

यह सोचते थे कि नवीन मन्त्रि-मण्डल ने महारानी को विवश किया कि वह देश त्याग करदें। सवसाधारण की सहानुभूति का महारानी ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उपयोग करना चाहा। उसकी योजना यह थी कि महाराजा शासन करने के अयोग्य हैं, वे अत्यन्त निबल और बुद्धिहीन हैं। अतएव उनको सिंहासन से उतारकर अपने पुत्र को राज्यसिंहासन पर बठाये और स्वयं अभिभावक शासिका बनकर नेपाल पर शासन करे।

परन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हो गया। उसकी योजना के असफल हो जाने पर उसे अपनी सुरक्षा की आशंका हो गई। अतएव वह एक बार पुन काशी की ओर चल पड़ी। परन्तु इस बार तराई के भयंकर ज्वर से वह पीड़ित हो गई और ६ अक्तूबर १८४१ को उसकी मृत्यु हो गई।

महारानी की मृत्यु के साथ ही युद्ध समर्थक दल की आशायें तिरोहित होगईं क्योंकि महारानी मराठा सरदारों, सिक्खों राजपूत राजाओं और अफगान के अमीर से अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के सबंध में पत्र-व्यवहार कर रही थी और वह अंग्रेजों के विरुद्ध एक संगठित मोर्चा बनाने का प्रयत्न कर रही थी। उसके मरते ही यह आशा कि अंग्रेजों के उन शत्रुओं की नेपाल को सहायता मिल सकती समाप्त हो गई और युद्ध समर्थक दल शक्तिहीन हो गया।

अब नेपाल की नीति एकदम बदल गई। महाराजा ने अंग्रेज गवर्नर जनरल को लिखा कि वह अपनी सेनाओं को अफगानिस्तान और बर्मा के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता के लिए भेजने को तयार हैं। यद्यपि अंग्रेजों ने नेपाल की इस सनिक-सहायता को स्वीकार नहीं किया परन्तु उससे भावी अंग्रेजों और नेपाल की मित्रता का आरम्भ हुआ। आरम्भ में अंग्रेजों के मन में नेपाल की ओर से थोड़ी शंका थी परन्तु १८५७ में जब भारत में अंग्रेजी शासन को उलटकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सशस्त्र क्रान्ति हुई उस समय जब नेपाल ने अंग्रेजों की सहायता की तो अंग्रेजों को नेपाल पर पक्का विश्वास हुआ।

यद्यपि नेपाल की बाहरी राजनीति में बहुत अधिक अन्तर आ गया था पर अंग्रेजों की घोर शत्रु बड़ी महारानी मर चुकी थी और युद्ध-समर्थक दल शक्तिहीन होकर विघटित हो चुका था किन्तु नेपाल की आन्तरिक राजनीति में कोई अन्तर नहीं आया था।

बड़ी महारानी के मरने के उपरान्त उसका पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी बना। महाराजकुमार सुरेन्द्र को छोटी महारानी से अपनी रक्षा करने के लिए सतत संघर्ष करना पड़ रहा था। छोटी महारानी बड़ी महारानी की मृत्यु के उपरान्त शक्तिशाली हो गई थी। उसने बड़ी महारानी का स्थान ले लिया था और उसका दृढ़ निश्चय था कि उसका पुत्र नेपाल के राजसिंहासन पर अपने पिता के बाद बठेगा। यही कारण था कि महाराजकुमार सुरेन्द्र को अपने जीवन की रक्षा के लिए सतर्क रहना पड़ता था। छोटी महारानी का कहना था कि महाराजकुमार सुरेन्द्र निर्बल मस्तिष्क का और शासन करने के अयोग्य है। एक दो घटनाएं ऐसी हुईं जिनसे महाराजा और महाराजकुमार सुरेन्द्र के बारे में लोगों की यह भावना दृढ़ हो गई कि वह शासन करने के योग्य नहीं है।

एक अत्यन्त मनोरंजक घटना घटी जिसके फलस्वरूप महाराजा और महाराजकुमार सुरेन्द्र की प्रतिष्ठा कम हो गई। भारत में एक समाचार

पत्र में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि बड़ी महारानी को जहर देकर मार डाला गया। महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह इस खबर से इतना क्रुद्ध हुआ कि वह तुरन्त रेजीडंसी गया और यह मांग की कि उस बदनाम करनेवाले व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिया जाये। उन दिनों बड़ी महारानी की मृत्यु के कारण दरबार में शोक था। शोक के दिनों में घोड़े पर चढ़ना वर्जित था। अतएव महाराजा और महाराजकुमार दो वृद्ध व्यक्तियों के कंधों की काठी पर चढ़कर रेजीडंसी पहुंचे। क्रोध से भरे हुए महाराजा ने हाजसन से कहा "गवर्नर जनरल को कहिए कि उन्हें उस आदमी को जिसने यह बात लिखी है मुझे देना ही होगा। मैं उसकी जिन्दा खाल खिचवाऊंगा और मरने तक उस पर नमक और नींबू रगड़वाऊंगा। गवर्नर जनरल से कह दीजिए कि यदि वह व्यक्ति हमारे सुपुर्द नहीं कर दिया जाता तो नेपाल और अंग्रेजी सरकार में युद्ध होगा। महाराजकुमार सुरेन्द्र को अपने पिता के इस व्यवहार से क्षोभ हुआ और उसने हस्तक्षेप किया। महाराजा क्रोध में भरा था। वह महाराजकुमार पर झपटा। दोनों में घूसों की लड़ाई होने लगी। लड़ते हुए दोनों अपने मानवीय घोड़ों पर से गिर पड़े और रेजीडंसी के फाटक के समीप लड़क गए। पुत्र ने पिता को पराजित कर दिया और उसे रेजीडेंट से अपने व्यवहार के लिए क्षमा मांगने पर विवश किया। कुछ समय के उपरान्त पुनः पुत्र को अपने पिता की ताड़ना देनी पड़ी। उसने अपने पिता को विवश किया कि वह रेजीडंसी में ब्रिटिश भारत के निवासी काशीनाथ को, जिसने वहां शरण ली थी उसको कैद करे। उस समय राजा एक सेना लेकर रेजीडंसी गया। रेजीडेंट हाजसन फाटक पर राजा से मिलने आया। राजा ने काशीनाथ को उनके सुपुर्द कर देने के लिए कहा। रेजीडेंट ने दृढ़तापूर्वक उसकी मांग को अस्वीकार कर दिया। इस पर राजा ने दौड़कर काशीनाथ को पकड़ना चाहा। रेजीडेंट ने उस व्यापारी को चिपटा लिया और तेजी से राजा से कहा कि तुम हम दोनों को कैद कर सकते हो। मैं उसको अकेले कैद नहीं होने दूंगा। राजा का यह साहस नहीं हुआ कि वह दोनों को कैद करता। महाराजकुमार सुरेन्द्र अपने पिता से पहले आग्रह करता रहा कि उसको कैद कर लिया जाये और बाद को उसने पिता के घूंसे मारे। परन्तु पिता का साहस नहीं हुआ कि वह उन दोनों को कैद करता। जबकि यह झगड़ा चल रहा था तो हाजसन के मित्र चौतरिया उसके कान में कहते थे कि तुम धैर्य और दृढ़ता से काम लो, सब ठीक हो जायेगा। सब कुछ तुम पर निर्भर करता है।

सभी वर्गों के लोग महाराजा से ऊब गए थे और नेपाल की स्थिति ठीक नहीं थी। हाजसन नेपाल के शासन में परिवर्तन के पक्ष में था किन्तु उसी समय लार्ड आकलैंड ने अपने पद से अवकाश ले लिया और लार्ड ऐलेनबरो उसके स्थान पर गवर्नर-जनरल बना। हाजसन के विरुद्ध यह बात तो स्वयं सिद्ध थी कि वह नेपाल के आन्तरिक मामलों में बहुत हस्तक्षेप करता था। अस्तु उसने पहले तो उसे नेपाल से वापस बुलाने की आज्ञा निकाल दी परन्तु उच्च अधिकारियों की सलाह मानकर उसने उसे वापस तो नहीं बुलाया परन्तु उसके अधिकारों को बहुत अधिक सीमित कर दिया और नेपाल के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की आज्ञा दे दी।

बड़ी महारानी के मरने पर महाराजकुमार सुरेन्द्र ने अपनी माता का स्थान ले लिया। वह भी अंग्रेजों का घोर विरोधी था। अब हाजसन नेपाल

के मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। महाराजकुमार मनमानी करता था
वह अपने पिता को भी परवाह न करके मनमाने ढग से काम करता था। राज
काज मे महाराजा का कोई दखल नहीं था। राजकुमार उस पर और उसकी प्रजा पर
अत्याचार करता था। १८४२ में सामत लोग तथा सवसाधारण विद्रोही हो
उठ। लोगों का कहना था कि वे दो स्वामियों की आज्ञा नहीं मान सकते।
उन्होंने ऐसे-ऐसे बहुत से उदाहरण दिए जिनमे पिता की आज्ञा मानने पर पुत्र
ने उन्हें दण्ड दिया और पिता उसका प्रतिकार नहीं कर सका। महाराजकुमार
प्रजा पर जो अत्याचार करता लोगों को अपमानित करता उनको दण्ड देता
महाराजा उनम से एक का भी प्रतिकार करन मे असमर्थ था। अत मे सभी
वर्ग और दल एक हो गए और उन्होंने महाराजा को शासन-अधिकार छोड़ने
पर विवश किया। महाराजा ने शासन-अधिकार छोड़ दिए। अब शासन
अधिकार छोटी महारानी लक्ष्मी देवी को प्राप्त हुए।
५ जनवरी १८४३ को राजेन्द्रविक्रमशाह ने अपनी प्रभुसत्ता छोटी
महारानी को सौंप दी। राज्य के प्रमुख अधिकारियों के सामने महाराजा
धिराज ने घोषणा की 'आप सबों को ज्ञात होना चाहिए कि यह राजाज्ञा और
हमारी इच्छा है और प्रसन्नता है कि आज से आप लोग महारानी लक्ष्मी देवी
(राज्य लक्ष्मी देवी) की आज्ञा मानें। वे ही नपाल की अधीश्वरी होंगी। उन्हें
प्राणदण्ड जीवनदान नियुक्ति और बरखास्तगी का शाही परिवार के लोगों को
छोड़कर सभी पर अधिकार होगा। वे युद्ध और सधि कर सकेंगी। हम निष्ठा
के साथ वचन देते हैं कि हम बिना उनकी सहमति और आज्ञा के कुछ नहीं
करेंगे।

महारानी लक्ष्मी देवी घोर महत्वाकांक्षी स्त्री थी। उसका कोई सिद्धांत
नहीं था। वह पांडे और चौतरियों की विरोधी थी और थापा परिवार की
मित्र थी। उसको अपने शत्रुओं पांडे परिवार और उनका सहायक अपने सौतेले
पुत्र महाराजकुमार को समाप्त करने का अवसर मिल गया। शासन अधिकार
हाथ में आते ही उसन शीघ्रता से काय किया और राज्य-व्यवस्था में यकायक
परिवतन हुआ। प्रधानमन्त्री भीमसेन थापा का निर्वासित भतीजा माथबरसिंह
अचानक काठमांडू मे प्रगट हुआ। सेना और जनता ने हर्ष और उल्लास के
साथ उसका स्वागत किया। माथबरसिंह अत्यन्त सुन्दर आकर्षक और भव्य
व्यक्तित्व का वीर पुरुष था। वह शिमला में अंग्रेजों की पेंशन पर रहता था।
छोटी महारानी के सकेत पर ही वह आया था। माथबरसिंह के पदारूढ़ होते
ही एकबार फिर नपाल दरबार में रुधिर बहा और दरबारियों ने रुधिर मे
स्नान किया। छोटी महारानी और महाराजा ने माथबरसिंह को पांडे परिवार
का समूल नाश करने की छुट्टी द दी जिससे कि आगे चलकर उसे कोई कठि-
नाई न हो। यह संहार बड़ी सतर्कता से किया गया। पांडे लोगों का
वध किया गया। वे स्वय अपनी कुकरी को तेज करके लाते थे जिससे उनके गले
साफ कट जावें व अधिक कष्ट न हो। रणजग पांडे तो प्राकृतिक रूप से ही
मरणासन्न था जब वह वधस्थल पर लाया गया। उसके अतिरिक्त कुरवान पांडे
कुवराई पांडे दो विश्वासघाती थापा इन्द्रबीर और रणराम, तथा कनकसिंह
माहन न्यायाधीश जिसने बिना मुकदमा सुने ही भीमसेन थापा को मृत्युदण्ड
दिया था—के सिर काट दिए गए। जोरमान कान्जी की नाक और होठ काट दिए
गए तथा बलराम बसनत की नाक काट दी गई। इसके बदले में माथबरसिंह

को उन चौतरिया मन्त्रियों को समाप्त करना था जिन्हें महाराजा और महारानी घृणा की दृष्टि से देखते थे।

१८४३ में जिस वर्ष पांडे वध हुआ उसी वर्ष ब्रेन हाजसन रिटायर हो गया और हैनरी लारेंस उसके स्थान पर ब्रिटिश रेजीडेंट बना। उसी वर्ष माथवरसिंह नेपाल का प्रधानमन्त्री बना। वास्तव में माथवरसिंह बहुत ही साहसी और महत्वाकांक्षी हो गया। तभी वह नेपाल लौटा और अपने राज्य के शासन की बागडोर को उसने अपने हाथ में ले लिया। भीमसेन थापा की जैसी दुखद मृत्यु हुई उसे देखते कोई अन्य व्यक्ति नेपाल वापस आकर उसका प्रधानमन्त्री बनने का साहस नहीं करता। वह अपने भतीजे जंगबहादुर कुंवर को साथ लाया था। जंगबहादुर कुंवर उसके साथ उसकी सेवा में था।

दो वर्षों तक चाचा और भतीजे ने नेपाल सरकार का निर्देशन महाराजा के उत्तराधिकारी महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम के शासन के अधीन किया। तब तक महाराजा राजेन्द्रविक्रमशाह ने प्रशासनिक अधिकार महाराजकुमार को सौंप दिए थे। वास्तविक स्थिति यह थी कि पिता और पुत्र दोनों ही काठमांडू के बड़े दरबार हाल में साथ बैठते थे। वहां अधिकारियों और मन्त्रियों की प्रार्थनाएं सुनते और निर्णय देते थे। औपचारिक रूप में वे निर्णय महाराजा के होते थे परन्तु वास्तव में वे होते पुत्र के थे। जंगबहादुर दरबार में साधारण पोशाक में उपस्थित होता था। पिता अत्यन्त निर्बल और प्रशासनिक योग्यता की दृष्टि से निकम्मा था। महाराजकुमार विलासी, चरित्रहीन था जिसमें नैतिकता की बहुत कमी थी। महारानी ने माथवरसिंह थापा को इस कारण प्रधानमन्त्री बनाया था क्योंकि उसकी धारणा थी कि वह कहे अनुसार काम करेगा और इस प्रकार उसका शासन पर गहरा प्रभाव होगा। उसकी यह आंतरिक अभिलाषा थी कि महाराजकुमार सुरेन्द्र विक्रम का नेपाल के राजसिंहासन पर अधिकार अस्वीकार कर दिया जाय और उसका पुत्र नेपाल के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाय। परन्तु माथवरसिंह थापा ने उसको स्वीकार नहीं किया। न तो नये प्रधानमन्त्री को यह स्वीकार था कि महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम को राजसिंहासन के उत्तराधिकारी होने से वंचित किया जाये और न वह महारानी के पुत्र को उत्तराधिकारी स्वीकार किए जाने के पक्ष में था। यही नहीं प्रधानमन्त्री माथवरसिंह थापा ने महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसका समर्थक और सहायक बन गया। महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम महारानी का घोर विरोधी और शत्रु था तथा उसके भतीजे जंगबहादुर को मृत्युदण्ड दिलानेवाला था। यदि माथवरसिंह महारानी के कहे अनुसार आचरण करता तो उसको महारानी के शत्रुओं की हत्या में सहायक तो अवश्य ही होना पड़ता।

महाराजा निर्बल शासक हो षड्यन्त्रकारी महारानी जिसका एक प्रेमी हो, और महाराजा और महारानी का विरोधी प्रधानमन्त्री हो तो उसका परिणाम यही हो सकता था कि नेपाल के महलों में फिर एक बार रुधिर-स्नान हो। जब महारानी माथवरसिंह को अपनी इच्छा के अनुसार काम करने के लिए राजी न कर सकी तो उसने यह निश्चय कर लिया कि उसके स्थान पर ऐसे व्यक्ति को लाया जाय जो उसके कहे अनुसार काम करे। गगनसिंह की मान्यता थी कि वही ऐसा व्यक्ति है कि जो महारानी की इच्छाओं को पूरा कर

सकता है । अतएव वह यह चाहता था कि किसी प्रकार भी माथबरसिंह थापा को हटाकर वह प्रधानमन्त्री बन जाये । अतएव वह ऐसे किसी षड्यन्त्र में सम्मिलित होने को तयार था जो माथबरसिंह को हटाने के लिए किया जाने वाला हो। उसने महारानी को सलाह दी कि वह महाराजा से कहे कि माथबर सिंह महाराजा को अपने पुत्र महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम के पक्ष मे सिंहासन छोड़ने के लिए विवश करने का षड्यन्त्र रच रहा है। यही नहीं उसकी योजना का केवल प्रथम चरण सुरेन्द्रविक्रम को राजसिंहासन पर बिठाना है। उसके उपरांत वह स्वयं राजसिंहासन हथियाकर राजवंश को समाप्त कर देना चाहता है। उसको अपने पति महाराजा राजेन्द्रविक्रम को इस बात के लिए तयार कर लेना चाहिए कि वह इस खतरनाक प्रधानमन्त्री को मृत्युदण्ड की आज्ञा दे दे । महा रानी ने महाराजा को माथबरसिंह के लिए मृत्युदण्ड की आज्ञा देने के लिए राजी कर लिया । महारानी तथा गगनसिंह की योजना यह थी कि प्रधानमन्त्री के समाप्त होते ही सारी शक्ति उन दोनों के हाथों मे आ जावेगी । परन्तु प्रश्न यह था कि माथबरसिंह की हत्या कौन करे ।

महारानी और महाराजा ने इस कृत्य के लिए जगबहादुर को चुना। उन दोनों ने जगबहादुर को अपने चाचा की हत्या करने के लिए क्यों चुना, यह कहना कठिन है । साथ ही यह कहना भी कठिन है कि उन्हें यह कैसे अनुमान हुआ कि जगबहादुर इस काय को करने के लिए तयार हो जावेगा । महाराजा ने जगबहादुर को बुला भेजा और उसे अपने चाचा को मारने की आज्ञा दी। साथ ही यह धमकी भी दी कि यदि वह इस कार्य को करना अस्वी कार करेगा तो उसको मरवा दिया जायेगा । महाराजा ने जगबहादुर से कहा कि जो भी हो माथबरसिंह की मृत्यु निश्चित है उसको जीवित नहीं रहने दिया जा सकता ।

जगबहादुर अपने चाचा की हत्या के लिए तुरन्त तयार हो गया । १७ मई १८४५ को महाराजा ने प्रधानमन्त्री को महारानी के महला में बुला भेजा । महाराजा ने स्वय अपने हाथों से भरी हुई बन्दूक जगबहादुर के हाथ में पकड़ाई और उसको पर्दे की आड़ म छिप रहने के लिए कहा । उसके साथ ही गगनसिंह तथा काजी कुलमानसिंह पाना भी पर्दे की आड में छिप गए । जैसे ही माथबरसिंह कमरे म घुसा जगबहादुरसिंह ने गोली मारदी और वह मर कर महारानी के चरणों में गिर पड़ा । उसके उपरान्त उसके शव को खिड़की से बाहर फेंक दिया गया । उसके शव को सड़कों पर घसीटा गया और पशुपतिनाथ ले जाया गया ।

जगबहादुर ने अपने दो भाइयों उदीप और बमबहादुर को शीघ्र बुला भेजा और उनसे माथबरसिंह के दोनों लड़कों को नेपाल की घाटी के सुदूर गांव में लेजाकर उन्हें भारत भेज देने का आदेश दिया ।

महारानी को केवल माथबरसिंह को मरवाकर ही सतोष नहीं हुआ। वह उन सभी को मरवा देना चाहती थी जो उसकी तीव्र इच्छा अर्थात् अपने पुत्र को नेपाल के राजसिंहासन पर बठाने का विरोध करते थे । माथबरसिंह का स्थान ग्रहण करनेवाला कोई नहीं था । बात यह थी कि महल म सब एकमत नहीं थे कि किसको प्रधानमन्त्री बनाया जाने और कोई भी उस पद के लिए दावा करने का साहस नहीं कर रहा था । महाराजा और महारानी की सम्मति से जगबहादुर शासन काय चलाने लगा। उसकी कोई वधानिक स्थिति

नहीं थी क्योंकि उसे प्रधानमन्त्री नियुक्त नहीं किया गया था । महारानी अपने प्रेमी और अपने पुत्रों के शिक्षक गगनसिंह को प्रधानमन्त्री बनाना चाहती थी । महाराजा गगनसिंह को प्रधानमन्त्री बनाने के खतरे को जानता था । अस्तु उसने गगनसिंह को प्रधानमन्त्री बनाना स्वीकार नहीं किया। निराश और हताश होकर उसने चौतरिया फतहजंगशाह को बुला भेजा । परन्तु उसको महाराजा महारानी के रोष के कारण प्रधानमन्त्री बनाने का साहस न कर सका । वह गगनसिंह को किसी प्रकार भी प्रधानमन्त्री बनाने के लिए तयार न था। वह फतहजंग के द्वारा महारानी के प्रेमी गगनसिंह को मरवा डालना चाहता था । दृढ़ निश्चय न कर सकने के कारण उसने एक ऐसा समझौता स्वीकार किया जिससे कि कोई भी नाराज न हो । प्रधानमन्त्री पद के लिए चार प्रार्थी थे जिन्हें विभिन्न दलों का समर्थन प्राप्त था उसने उन चारों को ही प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया । गगनसिंह के अधीन सात रजीमेंट, फतहजंग, जंग बहादुर, और अभिमानसिंह में से प्रत्येक के अधीन तीन-तीन रजीमेंट रक्खी गईं । फतहजंग के अधिकारों और शक्ति को कम करके उसे प्रधानमन्त्री बनाया गया । शेष तीनों क्रमशः उसके बाद अधिकारी थे । फतहजंग और अभिमानसिंह महाराजा के आदमी थे गगनसिंह महारानी का आदमी था, और सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि अब जंगबहादुर महाराजकुमार का आदमी था । राजनीति में कब कोई किसी का मित्र और शत्रु होता है यह कहना कठिन है । नेपाल में तो यह कहना और भी कठिन था ।

फतहजंग प्रधानमन्त्री बना । परन्तु जंगबहादुर को सेना को आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित करने और उसके अनुशासन में सुधार करने का कार्य सौंपा गया। जंगबहादुर सैनिकों का प्रिय और स्वाभाविक नेता था । उसे उसका मनचाहा काम मिल गया । जंगबहादुर को सेना के सुधार का कार्य सौंपकर महारानी तथा अन्य तीनों ने भयंकर भूल की । उन्होंने यह नहीं सोचा कि जंगबहादुर सैनिकों का आदमी है व सेना में सर्वप्रिय है । उसको सेना का आधुनिकरण करने का काम सौंपकर वे उसकी शक्ति को बढ़ा रहे हैं ।

१८४५ में सिक्ख सेनाओं ने सतलज नदी पार की और अंग्रेजों से युद्ध छिड़ गया । महाराजा रणजीतसिंह मर चुके थे और परस्पर लड़नेवाले सेनापति शक्तिवान थे । लाहौर दरबार ने नेपाल से सहायता माँगी । नेपाल की काउंसिल में यह प्रश्न विचारार्थ उपस्थित हुआ । फतहजंग और अभिमान सिंह ने महाराजा को सलाह दी कि वह खालसा (सिक्खों) की सहायता करे । जंगबहादुर और गगनसिंह ने उसका विरोध किया । जंगबहादुर पंजाब में रहा था । सिक्खों के बारे में उसकी धारणा ऊंची नहीं थी । उसने अंग्रेज सेना के बारे में और अंग्रेज सैनिक अफसरों के बारे में जो कुछ सुना था उससे वह अंग्रेजों से अधिक प्रभावित था । नालापानी युद्ध के सेनानी अमरसिंह ने जो कुछ अंग्रेजों के बारे में कहा था और महान् राजनीतिज्ञ भीमसेन थापा ने अंग्रेजों के बारे में जो कुछ कहा था जंगबहादुर भूला नहीं था । महाराजा और महारानी ने बीच का मार्ग अपनाया । उन्होंने सिक्ख दरबार से कहला भेजा कि जैसे ही देहली के किले पर सिक्खों की विजय होगी नेपाल की सैनिक सहायता पहुँच जायेगी । परन्तु शीघ्र ही सिक्खों की पराजय हो गई और नेपाल को इस सम्बन्ध में कोई निर्णय करने की आवश्यकता नहीं पड़ी ।

जंगबहादुर बड़ी ही सावधानी से खतरनाक मार्ग का अवलम्बन कर

रहा था । यद्यपि अपने चाचा माथबरसिंह की भांति वह महाराजकुमार सुरे
द्रविक्रम के पक्ष में आ गया था परन्तु वह महारानी और उसके प्रेमी गगनसिंह
के शिविर में भी अपना एक कदम रखता था । यद्यपि यह मार्ग खतरनाक था।
किन्तु उसने बड़ी चतुराई से उसको निबाहा ।
नेपाल में हत्या करना साधारण बात थी । जिस प्रकार सब लोग
रण खाने और पीने के अभ्यस्त होते हैं उसी प्रकार नेपाल में राजनैतिक हत्यायें
एक साधारण-सी बात थी । प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यक्ति को खतरा था कि वह दिन
उसका अंतिम दिन हो सकता है ।
जंगबहादुर इतना शक्तिशाली था कि कोई उस पर खुले रूप में
आक्रमण नहीं कर सकता था । परन्तु बहुत से उसको गुप्त रूप से मार डालने
के इच्छुक थे । अस्तु वह जहां भी जाता अपने भरोसे के वीर अंगरक्षकों को
साथ रखता यहां तक कि वह शिकार में भी अंगरक्षकों को साथ ले जाता ।
१२ सितंबर १८४६ को महाराजा राजेन्द्रविक्रम ने अपने दो पुत्रों
सुरेन्द्रविक्रम और उपेन्द्रविक्रम को आज्ञा दी कि वे महारानी के नीच वर्ग के
प्रेमी गगनसिंह को मारकर राजघराने पर लगी हुई इस कालिमा को धो डालें ।
गगनसिंह आरम्भ में राजदरबार में एक छड़ीदार था । उसकी
प्रेयसी महारानी ने उसे जनरल और प्रधान सेनापति बना दिया । उपेन्द्र को जब
महाराजा ने प्रधान सेनापति को मारने की आज्ञा दी तो उस कार्य की गुरुता
के भार से दबकर वह प्रधानमंत्री से सलाह करने गया । फतहजंग ने अपने
सहयोगी अभिमानसिंह तथा काउंसिल के पांडे सदस्य धीरकिशोर से सलाह की
और उन्होंने उपेन्द्र को यह सलाह दी कि वह गगनसिंह को मारने के लिए किसी
को किराये पर तयार करे । उसका कारण था कि उपेन्द्र अभी लड़का था और
सुरेन्द्रविक्रम सनकी और निर्बल था । उन्होंने महाराजकुमारों के लिए एक
ब्राह्मण लाल झा तयार कर दिया । दो दिन पश्चात् लाल झा ने गगनसिंह के
मकान के पास के एक दूसरे मकान की छत पर से, जब गगनसिंह पूजा कर
रहा था उसे गोली से मार दिया । कुछ लोगों का मानना यह है कि जंगबहादुर
ने ही वास्तव में गगनसिंह को मरवाया था ।
महारानी ने जब अपने प्रेमी की हत्या का समाचार सुना तो वह
क्रोध से जल उठी । तुरन्त ही वह अपने प्रेमी के मकान पर गई और उसकी
तीनों विधवा स्त्रियों को उसने उसकी चिता पर सती होने से मना कर दिया ।
वह नहीं चाहती थी कि वे उसकी चिता पर सती होकर उसकी विधिवत पत्
पत्नी होने का दावा करें । उसके उपरान्त उसने सभी मुख्य ५ राज्य अधिका
रियों को कोट में बुला भेजा । जंगबहादुर अपनी तीनों रजीमेंटों के साथ वहां
गया । साथ ही वह अपने सभी भाइयों और सम्बन्धियों को भी साथ ले गया ।
उसके पास अपने घर की एक सेना हो गई । काठमांडू में होने के कारण वह
सबसे पहले अपनी सेना के साथ पहुंचा । महारानी इससे नाराज हुई और
उतनी सेना लाने का कारण पूछा । चतुर जंगबहादुर ने न केवल उसके भय
और शंका को ही दूर कर दिया वरन् उससे एक आज्ञा पर हस्ताक्षर भी करवा
लिए जिससे उसने अन्य सभी सेनापतियों को कोट में अपनी सेना लाने के लिए
मना करवा दिया था । तब तक जंगबहादुर के सैनिकों ने कोट की इमारत
को घेर लिया । अतएव उस समय वहां जंगबहादुर ही सर्वशक्तिमान बन
गया । जंगबहादुर ने अपनी युक्ति से अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को ही नहीं अपनी

मित्र-महारानी को भी मना कर दिया । सभी सैनिक तथा सिविल अधिकारी कोट में पहुँचने लगे । महारानी क्रोध में इतनी अधिक भरी हुई थी कि वह कोई बातचीत करने के लिए तैयार न थी । वह तो केवल अपने प्रेमी की मृत्यु का बदला लेना चाहती थी ।

जब लोग कोट में इकट्ठे हो गए तो उसने अपनी अंगुली पांडे वीर किशोर की ओर उठाकर कहा कि यह हत्यारा है और उसने अभिमानसिंह को आज्ञा दी कि उसको कैद कर लिया जावे । अभिमानसिंह ने पांडे वीरकिशोर को पकड़ लिया । वीरकिशोर ने साहस और तेजी के साथ इस अपराध को अस्वीकार किया । महारानी की धमकियों से भी वह नहीं डरा और उसने अपराध को स्वीकार करने से साफ मना कर दिया । क्रोध से महारानी की आँखें लाल हो रही थीं । उसने अभिमानसिंह को आज्ञा दी कि वह वीरकिशोर का उसी स्थान पर सर काट दे । महाराजा राजेन्द्रविक्रम ने हस्तक्षेप किया कि बिना मुकदमे के प्राणदण्ड नहीं दिया जा सकता । अभिमानसिंह ने भी इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया । महाराजा घबड़ा गया । वह महारानी से भयभीत था । अस्तु वह बहाना बनाकर बाहर निकल गया और घोड़े पर सवार होकर तेजी से प्रधानमंत्री फतहजंग के मकान पर पहुंचा । उसने प्रधान मंत्री को कोट जाने का आदेश दिया । प्रधानमंत्री को कोट भेजकर वह अंग्रेज रजीडेंसी में शरण (सुरक्षा) प्राप्त करने के लिए गया । ब्रिटिश रजीडेंट इस आंतरिक मामले में पड़ना नहीं चाहता था । अस्तु उसने महाराजा राजेन्द्र विक्रम से मिलना अस्वीकार कर दिया । निराश होकर वह फिर कोट लौट कर आया । वहां आकर उसने देखा कि फाटक तथा नालियों में रुधिर बह रहा है तो वह फिर वापस फतहजंग के मकान को चला गया ।

उस समय कोट में जंगबहादुर की स्थिति सबसे अधिक मजबूत थी क्योंकि उसकी सेना और उसके शस्त्र सभी वहां मौजूद थे । वह यह कहता था कि अभिमानसिंह ने गगनसिंह की हत्या करवाई है । अस्तु जैसे ही फतहजंग अन्दर आया, उसने उसे रोका और कहा कि या तो वीरकिशोर और अभिमानसिंह को मृत्युदण्ड देना होगा अथवा महारानी को कैद करना होगा । उस समय तक महारानी को यह ज्ञात हो गया था कि जैसा मैं चाहती हूं सारी बात उसी तरह नहीं हो रही और उसकी आवाज लोगों को सुनाई नहीं दे रही है साथ ही अपनी सुरक्षा के ध्यान से वह महलों के अन्दर चली गई और खिड़की से झांककर उसने उत्तेजित भीड़ को देखा और उसने चीखकर फतहजंग से पूछा कि वह बतलाए कि हत्या किसने की है । फतहजंग ने चिल्लाकर कहा कि यह जानने में समय लगेगा । जंगबहादुर के कान में फतहजंग ने धीरे से कहा कि उसकी भी यही राय है कि महारानी को कैद कर लेना चाहिए । किन्तु उसको कैद करने का यह समय अनुकूल समय नहीं था । इस पर क्रुद्ध महारानी बौखलाई हुई नीचे उतर आई और उसने भीड़ को चीरकर अपने हाथ में तलवार लेकर वीरकिशोर को स्वयं मार डालना चाहा । लेकिन जंग बहादुर ने चतुराई से बिना महारानी को नाराज किए उसे वीरकिशोर को मारने से रोक दिया । स्थिति उस समय जंगबहादुर के हाथ में थी । वह जो चाहे कर सकता था किन्तु वह उस समय महारानी को नाराज नहीं करना चाहता था क्योंकि वह महारानी का उपयोग करना चाहता था ।

अब उसके पास यह सूचना आई कि अभिमानसिंह और फतहजंग

शाह बिना उसको पूछे और विश्वास में लिए परामर्श कर रहे हैं। वह तुरन्त समझ गया। जोना चक्कर महारानी के पास गया और उससे दावा किया कि अभिमानसिंह के सैनिक उसके समर्थकों को पराभूत कर उसको कैद करने के लिए आ रहे हैं। क्या वह तुरंत अभिमानसिंह को कैद करने की आज्ञा देगी? महारानी ने अभिमानसिंह को कैद करने की आज्ञा दे दी। जैसे ही अभिमानसिंह अपने सैनिकों से जिन्हें उसने बुला भेजा था मिलने के लिए जाने लगा तो संतरी ने उसे रोका। अभिमानसिंह ने पूछा कि किसकी आज्ञा से तुम मुझे रोक रहे हो? संतरी ने कहा कि महारानी ने काजी जगबहादुर के द्वारा उसे रोकने की आज्ञा दी है। अभिमानसिंह ने स्थिति को समझ लिया और संतरी को हटाकर निकलना चाहा। संतरियों के नायक ने उसको रोका तो वह क्रोधित हो उठा। यह सुनकर कि अभिमानसिंह उसकी आज्ञा की अवहेलना करना चाहता है महारानी ने रक्षकों को आज्ञा दे दी कि यदि अभिमानसिंह जबरदस्ती निकलना चाहे तो वे अपने शस्त्रों को काम में लायें।

यह द्वंद्व चल ही रहा था कि जनरल अभिमानसिंह राणा बहुत उत्तेजित और क्रुद्ध हो गए। संतरी भी उत्तेजित हो उठा। उसने बंदूक उठा ली और अभिमानसिंह की छाती में अपनी किर्च घुसेड़ दी। अभिमानसिंह मर्मान्तक पीड़ा के कारण गिर गया। जब वह मरने लगा तब उसने चिल्लाकर कहा कि स्वयं जगबहादुर ने गगनसिंह की हत्या की है। फतहजंग के सबसे बड़े लड़के खरकविक्रम ने यह सुनकर चिल्लाकर कहा कि जगबहादुर ने हम सबको धोखा दिया और विश्वासघात किया है। अस्तु सभी को उसके साथ मिलकर आवश्यकता हो तो अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

जगबहादुर के छोटे भाई कृष्ण ने उससे मुँह बंद करने और चुप रहने को कहा। खरक ने उसी पर अपनी तलवार से वार किया। कृष्ण ने हाथ से वार को बचाया किन्तु उसका अंगूठा कट गया। खरक ने दूसरा वार करने के लिए अपनी तलवार उठाई। परन्तु जगबहादुर के दूसरे भाई ने हस्तक्षेप किया और उसके सर पर गहरा घाव लगा। जगबहादुर का तीसरा भाई धीरशमशेर जो तलवार चलाने में प्रसिद्ध था, पास ही था। तब तक उसने अपनी तलवार (खोरा) निकाल ली थी। एक वार में ही उसने खरकविक्रम के दो टुकड़े कर दिए। सब ओर सन्नाटा छा गया।

जगबहादुर फतहजंग के पास गया और कहा कि खरकविक्रम ने झगड़ा शुरू किया था। पिता से उस बात को भूल जाने और क्षमा कर देने के लिए कहा। उससे बात न करके फतहजंग तथा अन्य मंत्री महारानी के पास दौड़े। जगबहादुर ने उन्हें रोका और कहा कि गगनसिंह की मृत्यु के मामले में वह सर्वथा निर्दोष है। परन्तु फतहजंग ने उसको धक्का दे दिया और वह अपने साथी मंत्रियों के साथ महारानी के पास जाने के लिए आगे बढ़ने लगा। जगबहादुर ने उस जीने (सीढ़ियों) की रक्षा के लिये जो रक्षक सैनिक नियुक्त किए थे उनके नायक ने आज्ञा दी। सैनिकों ने गोलियां चला दीं और तीनों मंत्री मर कर गिर गए।

कोट के विशाल प्रांगण में एक ओर दूर पर जगबहादुर के चौथे भाई उदीप को एक चौतरिया मार रहा था। जगबहादुर के भाई असावधान थे। इस कारण उनके विरोधी अनजाने में वार करने लगे। बमबहादुर

और कृष्ण ने जब देखा कि उनका भाई उदीप खतरे मे है तो उन्होंने अपनी तलवारें निकाल लीं और वे अपने भाई की सहायता के लिए झपटे और चौतरिया को धराशायी कर दिया।

फतहजंग के भाई ने जब देखा कि उसका भाई प्रधानमंत्री मारा गया तो उसने चिल्लाकर कहा कि राजपूत कभी पीठ नहीं दिखाते आओ हम वैरियों से बदला लो। प्रत्येक व्यक्ति ने जो भी अस्त्र उसके हाथ में आया लेकर वार करना आरम्भ कर दिया। जंगबहादुर की ओर कुछ लोग झपटे। उसी समय यकायक जंगबहादुर की सेना की एक कम्पनी बाहर से उस प्रांगण में घुस आई और जो भी जंगबहादुर के शत्रु उसके सामने आए उनका सफाया कर दिया। चौतरिया भय के मारे दीवार के साथ बने हुए मकानों में घुस गए अथवा उनकी दीवारों पर चढ़ गए। उस समय भयंकर नरसंहार हुआ। सैकड़ों की संख्या मे सामंत, उच्च अधिकारी इस आम-कत्ल में मारे गये। उसी समय महाराजा राजेन्द्रविक्रम रेजीडेंसी से निराश होकर वापस आया और उसने फाटक तथा नालियों से रुधिर बहते हुए देखा और लौट गया। इस भयंकर हत्याकांड मे फतहजंग, खरकविक्रम अभिमानसिंह मंत्री दलबदलसिंह पांडे और यक युद्ध का वीर रणजुर थापा मारे गए।

जंगबहादुर ने फतहजंग के भाई की जान बचाई और उसको सुरक्षित बाहर निकाल दिया। जब यह युद्ध चल रहा था और रुधिर बह रहा था तो उस समय जंगबहादुर महारानी की रक्षार्थ उसके समीप ही खड़ा रहा। महारानी ने उसी समय उसको प्रधानमंत्री और प्रधान सेनापति पद पर नियुक्त कर दिया।

जब वह भयंकर हत्याकांड समाप्त हो गया तो महारानी ने महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम को बुलाया जिससे वह इतना भयभीत हो गया कि वह भी अपने पिता के साथ बनारस चले जाने की बात सोचने लगा किन्तु जंगबहादुर महाराजकुमार को अपनी मुट्ठी से बाहर नहीं जाने देना चाहता था। वह महाराजकुमार से मिला और उसको समझाया कि उसके सारे शत्रु मारे जा चुके हैं और वह उसकी रक्षा करेगा। अस्तु उसे नेपाल छोड़कर नहीं जाना चाहिए। सुरक्षा का आश्वासन पाकर महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम काठमांडू में ही ठहरा रहा। अब सुरेन्द्रविक्रम जंगबहादुर के हाथ की कठपुतली था। वह उसका उपयोग भयानक महारानी के विरोधी के रूप में करना चाहता था।

महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम और उपेन्द्रविक्रम की महारानी से रक्षा के लिए जंगबहादुर ने अपने विश्वस्त सैनिकों की टुकड़ियों को उनके मकानों पर नियत कर दिया। महारानी यह धमकी दे रही थी कि यदि महाराजा ने उसके पुत्र रानेन्द्र को सिंहासन पर नहीं बिठाया तो ऐसा भयानक हत्याकांड होगा कि जिसके सामने कोट-हत्याकांड नगण्य हो जायेगा।

जब महाराजा राजेन्द्रविक्रम ने सुना कि फतहजंग मारा गया तो वह उसके मकान से हनुमानधोका महल चला आया जहां महारानी भी आ गई थी। हनुमानधोका महल मे जंगबहादुर नये प्रधानमंत्री के रूप मे उसका अभिवादन करने पहुँचा। जब महाराजा ने पूछा कि यह हत्याकांड किसकी आज्ञा से हुआ तो उसने सारा दोष स्वयं महाराजा पर डाल दिया। उसने कहा महाराज, यह सब महारानी की आज्ञा से हुआ जिनको आपने महाराजा के संपूर्ण अधिकार दे दिए थे। महाराजा चुप हो गया।

महाराजा राजेन्द्रविक्रम इतना घबडा गया और भयभीत हो गया कि वह काठमांडू छोड़कर पाटन चला गया और वहां से काशी जाने की तयारियां करने लगा।

अब सारी सत्ता जगबहादुर के हाथ मे आगई थी। उसने पूरी तरह अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाने के लिए तेजी से काम किया। जो भी सामंत और ऊंचे अधिकारी उस हत्याकांड में मारे गए थे या जो भाग गए थे, उनके परिवारों को उसने देश से निर्वासित कर दिया और आज्ञा दे दी कि यदि वे फिर कभी नेपाल मे वापस आए तो उनको मृत्युदण्ड दिया जावेगा। जबकि वार्षिक पजनी समारोह हुआ और सब पद और अधिकार राजा को समर्पित कर दिए गए तो उसने ऐसे एक भी अधिकारी को पुन नियुक्त नहीं होने दिया जिससे उसको यह आशंका थी कि वह उसका विरोध करेगा। उनके स्थान पर उसने अपने समर्थकों को नियुक्त करवाया। उसने अपने भाइयों और संबंधियों को सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर नियुक्त कर दिया।

जगबहादुर ने मैदान में एक विशाल सैनिक परेड कराई और उसने स्वयं सार्वजनिक घोषणा की कि मैं नेपाल का प्रधानमंत्री और प्रधान सेनापति हूं। १८४६ मे उसने अपने लिए और अपने वंशजों के लिए गौरवपूर्ण राणा उपाधि धारण की। महाराजा ने उसको तथा उसके वंशजों को 'राणा' की गौरवमयी उपाधि प्रदान की थी। अब जगबहादुर राणा जगबहादुर हो गया। उसकी शक्ति और सत्ता अपरिमित थी। नाममात्र को वह केवल प्रधानमंत्री था। वास्तव में वही नेपाल का स्वामी और शासक बन गया।

ब्रिटिश रेजीडेंट हेनरी लारेंस ने इस संबंध में कहा था कि यह कौन विश्वास करेगा कि जिस देश के राजदरबार मे आए दिन रुधिर-स्नान होता हो वहां के लोग बिना उत्तेजना और अशांति के रहते हैं। नेपाल मे जहां राजदरबार में यह घटनाएं घट रही थीं सर्व-साधारण शांतिपूर्वक थे।

अध्याय नवां

राणा शासन की स्थापना—राणा जगबहादुर

१७४२ में जब पृथ्वीनारायनशाह ने अपने स्वर्गीय पिता का दाह संस्कार कर गोरखा म नोवकोटाल को वापस लौटा तो उसके साथ उसका मुख्यमंत्री अहिरामकुंवर था जो रवास जाति का था। अहिरामकुंवर पहाड़ी राजपूत था। अहिरामकुंवर का पुत्र रामकृष्ण था जो पृथ्वीनारायनशाह का अत्यन्त विश्वासपात्र साहसी और वीर सेनापति था जिसने चौबीसा और बाईसा राज्यों को विजय किया। रामकृष्ण का पुत्र रणजीतकुंवर भी अपने पिता की भांति ही वीर और साहसी था। उसने कांगड़ा और पटोली के युद्धों में बहुत पराक्रम प्रदर्शित किया था और यश कमाया था। रणजीतकुंवर के तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र बलनारसिंहकुंवर था जिसने शेरबहादुर को दरबार में ही मार डाला था जबकि उसने अपने सौतेले भाई महाराजा रणबहादुर को १८०७ में भरे दरबार में अपनी तलवार से काट डाला था। उसके फलस्वरूप बलनारसिंहकुंवर की दरबार में बहुत अधिक प्रतिष्ठा बढ़ गई थी। उसको महाराजा के सामने अपनी ढाल ले जाने का अधिकार प्राप्त हुआ और उसको वंश-परम्परागत काजी (मंत्री) की उपाधि प्राप्त हुई।

बलनारसिंह ने प्रधानमंत्री भीमसेन थापा की भतीजी से विवाह किया। उससे बलनारसिंह के सात पुत्र हुए। जंगबहादुर उसका दूसरा पुत्र था। वह १८ जून १८१७ को पैदा हुआ। उसके माता पिता ने उसका नाम बिरनारसिंह रक्खा था किन्तु उसके चाचा माथबरसिंह के कहने पर उसका नाम जंगबहादुर रक्खा गया। जंगबहादुर अपने चाचा माथबरसिंह के साथ १८४३ में काठमांडू वापस लौटा।

जंगबहादुरसिंह के बचपन की बहुत-सी कहानियां प्रसिद्ध हैं। उसका पिता काजी बलनारसिंह उत्तर पश्चिमी जिले का सैनिक कमांडर था। इस कारण जंगबहादुर तथा उसके भाइयों को बचपन में काठमांडू (राजधानी) से दूर रहना पड़ा। जंगबहादुर के अन्य छह भाई बमबहादुर बद्रीनरसिंह कृष्णबहादुर राजा उदीपसिंह जगतशमशेर और धीरशमशेर थे। जंगबहादुर साहसी वीर भयवान परिस्थिति के अनुसार साधन जुटानेवाला सिद्धान्तहीन व्यक्ति था। इन गुणों के साथ उसमें स्नेह और ममता नहीं थी और वह एकान्तप्रिय था। उसके विचार अपने थे वह अपने विचारों को किसी पर प्रकट नहीं करता था। दूसरों में मतभेद और वमनस्य उत्पन्न कराने में उसे प्रसन्नता होती थी। यद्यपि वह दुबला था परन्तु वह बहुत फुर्तीला और शक्तिशाली था। सब मिलाकर

वह बहुत सुन्दर नहीं था किन्तु उसके चेहरे से शौर्य और दृढ़ता चमकती थी। उसके स्वभाव में कठोर प्रशासक की जन्मजात कठोरता थी। वह काम में सैनिक की ढीलढाल पसंद नहीं करता था। थोड़ी सी भूल होने पर क्रुद्ध हो उठता था और धैर्य खो देता था। वह सैनिक की विरोध सहन नहीं कर सकता था। वह शिक्षित नहीं था यह कहना चाहिए कि वह अशिक्षित था। परन्तु संसार के घटनाचक्र की वह जानकारी रखता था। इङ्गलैंड और भारत के समाचार पत्रों को वह पढ़वाकर सुनता था। वह बहुत मितव्ययी और सादा था। शान-शौकत में धन व्यय नहीं करता था। वह एक बहादुर सैनिक था। उसकी दिनचर्या बहुत अनिश्चित थी। कभी बहुत जल्दी उठ जाता, तो कभी बहुत देर से उठता। इसी प्रकार उसके सोने का समय भी निश्चित नहीं था।

जंगबहादुर जब सेना में भर्ती हुआ तो उसका अपने अधिकारियों से झगड़ा ही होता रहा। सभी उसको जानते थे कि वह अनुशासन में नहीं रह सकता क्योंकि वह एक प्रतिष्ठित घराने (काजी परिवार) का पुत्र था इस कारण सभी अधिकारी उसको जानते थे। उसकी अनुशासनहीनता की चर्चा काठमांडू में सर्वत्र होती थी। उसका पिता भी अपने इस स्वतन्त्रताप्रिय स्वच्छन्द पुत्र को अंकुश में नहीं रख सकता था। वह स्वतन्त्र था। किसी कायदे कानून को नहीं मानता था। उसका कानून स्वयं उसकी इच्छा थी। वह परिणाम की चिंता न कर मनमाने काम करता था। परन्तु सेना में साधारण सैनिक का वह प्रिय और विश्वासपात्र था। साधारण सैनिक उसकी प्रतिष्ठा करते थे। वह नेपाल सेना के कायदों और नियमों की अवहेलना करता था अपने से उच्च अधिकारियों की आज्ञा उल्लंघन करता था, परन्तु फिर भी उसका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली और आकर्षक था कि सैनिक उसको चाहते थे। वह एक साहसी शैतान था। वह घोर जुआरी था और जीवन भर जुआ खेलता रहा। सैनिकों का प्रिय नेता और विश्वासपात्र था। वह एक अत्यन्त कुशल शिकारी था। कुशल और सिद्धहस्त शिकारी के नाते उसकी कीर्ति सभी पर विदित थी।

१८३७ में जब भीमसेन थापा का पतन हुआ तो बलनारसिंह और उसका पुत्र राज्य-सेवा से निकाल दिए गए क्योंकि वह थापा परिवार के थे। जंगबहादुर ने सोचा कि वह अपना जीवन-यापन तथा जुए के ऋण को चुकाने के लिए तराई में हाथियों को पकड़ने का काम करेगा। अस्तु वह तराई के जंगलों में चला गया। परन्तु आर्थिक दृष्टि से वह नितान्त असफल रहा। भाग्यवश उसको सेना में पुनः शीघ्र वापस बुला लिया गया और उसके जीवन-यापन का प्रश्न हल हो गया। हाथियों से उसे विशेष लगाव था। वे उसके आकर्षण का केन्द्र थे। हाथियों के पकड़ने में उसकी चतुराई और शक्ति काम आती थी। एक बार काठमांडू में एक हाथी 'मस्त' हो गया। जब हाथी मस्त हो जाता है तो वह अत्यन्त भयावह हो जाता है। अनुभवी महावत इस अस्थायी मस्ती के चिह्न पहचानते हैं और मस्त होने के पूर्व ही उसके पैरों को दोहरी मोटी लोहे की जंजीरों से बांध देते हैं। उस मस्त हाथी ने अपने महावत को मार डाला था और वह काठमांडू से भयंकर चीत्कार करता गांवों की ओर भाग गया और वहां उसने सभी को भयभीत कर दिया। कोई उसको पुनः पकड़ने का साहस नहीं करता था। जब जंगबहादुर को यह खबर मिली तो वह अकेला उसको पकड़ने गया। वह हाथी प्रतिदिन एक ही रास्ते से जाता था और उसी क्षेत्र में फिरता था। जब वह प्रातःकाल जाता तो एक गांव के पास से निकलता था।

जगबहादुर ने शाही महावत को पास ही खड़ा रहने की आज्ञा दी और सड़क के पास एक पेड़ पर चढ़कर उसकी डालों पर हाथी की प्रतीक्षा करता रहा। जब पागल हाथी उसके नीचे से निकला तो वह धीरे से उसकी गर्दन पर कूद पड़ा। हाथी अब उसको नीचे फेंक देने के लिए प्रयत्न करने लगा। जंगबहादुर के लिए यह जीवन-मरण का संघर्ष था। यदि हाथी उसको अपनी गर्दन पर से फेंक देने में सफल हो जाता तो फिर उसकी मृत्यु निश्चित थी। किन्तु जगबहादुर जोंक की तरह चिपट गया। शाही महावत दौड़ा और उसने हाथी की एक टांग में लोहे की जंजीर डालकर उसे पेड़ से बांध दिया। जगबहादुर ने फिर पेड़ की डाल को पकड़ लिया और पेड़ पर से उतर गया।

जगबहादुर जैसे साहसी और महत्वाकांक्षी युवक के लिए नेपाल की छोटी-सी सेना में विशेष उन्नति के लिए अवसर नहीं था। अस्तु उसने सेना छोड़ दी। उसने बिना अवकाश के ही अवकाश ले लिया। पांडे लोगों की दृष्टि उस पर थी। वे उसको खतरनाक व्यक्ति मानते थे। अस्तु उसने देश ही छोड़ दिया और लाहौर चला गया। लाहौर में उसने क्या किया और वह किस उद्देश्य से गया यह नहीं कहा जा सकता। यदि उसका उद्देश्य महाराजा रणजीतसिंह को अंग्रेजों के विरुद्ध उभारना था तो वह असफल रहा यदि उसका उद्देश्य उसकी सेना में कोई उच्च पद प्राप्त करना था तो भी वह सफल न हुआ। लाहौर में सफल न होने से उसकी आर्थिक दशा गिर गई। उसके पास का धन जब समाप्त हो गया तो बिना किसी हिचक के वह नेपाल आया और अपनी सेना में हाजिर हो गया। नेपाल सेना में उसे कोई दंड नहीं दिया गया वरन् उसकी पदोन्नति हो गई। उसके पिता काजी बलनार को भी जेल से मुक्त कर दिया गया। नेपाल सेना के अधिकारियों ने सोचा कि सिक्ख सेना में रहकर जगबहादुर नवीन रण-कौशल की शिक्षा लेकर लौटा है।

जगबहादुर ने लौटने पर पाया कि वह बड़े ही अनुकूल समय पर लौटा है क्योंकि उसी समय महारानी ने उसके चाचा माथबरसिंह को वापस बुला भेजा था। माथबरसिंह को महारानी ने देश के सर्वोच्च पद (प्रधानमंत्री) पर नियुक्त किया था। षडयन्त्रों के बीच माथबरसिंह प्रधानमंत्री बना था। उसको एक विश्वासपात्र सहायक की आवश्यकता थी। उसने अपने भतीजे जंगबहादुर को जो साहसी, वीर और दृढ़ विचारवाला था अपना सहायक चुना। जगबहादुर ने एक बार फिर सेना को छोड़ा और अपने चाचा के साथ काठमांडू आ गया। आरम्भ में जगबहादुर अधिक सक्रिय नहीं हुआ। वह केवल नेपाल की राजनीति को देख और परख रहा था।

जगबहादुर के प्रारम्भिक कूटनीतिक अनुभव अधिक सुखद नहीं थे। माथबरसिंह थापा अंग्रेजों से प्रसन्न नहीं था। उसने अंग्रेजी कम्पनी की शक्ति का सही अंदाज नहीं लगाया। माथबरसिंह पुन सिक्किम, गढ़वाल और कुमायूं को लेना चाहता था तथा भूटान के उत्तरी भाग को हड़पना चाहता था। लाहौर-दरबार रणजीतसिंह भी अंग्रेजों पर आक्रमण करना चाहता था और क्योंकि माथबरसिंह का लाहौर-दरबार से परिचय था अस्तु सिक्ख राज्य और नेपाल में अंग्रेजों के विरुद्ध दुरभिसंधि चलने लगी। सिक्ख प्रतिनिधि मंडल बनारस पहुँचा और माथबरसिंह ने जगबहादुर को उससे बात करने के लिए भेजा। नेपाल सरकार तथा सिक्ख एक बार सभी स्वतन्त्र शासकों को संगठित कर अंग्रेजों को देश से निकालबाहर करना चाहते थे। बनारस में सभी मिलकर, अंग्रेज

विरोधी अभियानकी योजना बनाना चाहते थे। बनारस के स्थानीय अंग्रेज अधिकारी बहुत सतर्क थे। उन्होंने नेपाली मिशन तथा सिक्ख प्रतिनिधि-मंडल को मिलने ही नहीं दिया। विवश होकर जगबहादुर तथा नेपाली मिशन को लौटना पड़ा। गवर्नर जनरल ने नेपाली मिशन को बनारस तुरन्त छोड़ देने की आज्ञा दी और सिक्ख मिशन को सम्मान के साथ लाहौर के लिए विदा कर दिया गया। नेपाल तथा सिक्खों का षडयंत्र सफल न हो सका।

जगबहादुर काठमांडू लौटकर पुनः फौज मे काम करने लगा। महाराजा बुद्धिहीन और शासन मे प्रभावशाली हस्तक्षेप करने के अयोग्य था। वह देश की राजनीति में प्रभावहीन था। महारानी थापा परिवार की मित्र थी। उसका मित्र और प्रेमी गगनसिंह प्रधानमंत्री के प्रभाव को संदेह की दृष्टि से देखता था और उससे ईर्षा करता था। महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम पहले की भांति पांडों का समर्थक और जिद्दी था। जगबहादुरसिंह परिस्थितिवश माथबरसिंह का आदमी था। महाराजकुमार सुरेन्द्र जगबहादुर की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर ईर्षा करता था और उसको अपना शत्रु मानता था। यदि जगबहादुरसिंह सावधान और सतर्क नहीं रहता तो उसके जीवन का अन्त शीघ्र ही हो जाता। सुरेन्द्रविक्रम उसको मार डालना चाहता था। वह उसको गहरी घृणा से देखता था।

एक बार जगबहादुर महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम के साथ घोड़े पर सवार चल रहा था। वर्षा के दिन थे सभी नदी नालों में भयंकर बाढ़ आ रही थी तो वे एक भयंकर नाले के समीप आए जिस पर लकड़ी का पुल था। उस पर केवल दो लकड़ी के लट्ठ पड़े थे। सुरेन्द्रविक्रम ने अपने अंगरक्षक जगबहादुर को उन लट्ठों के पुल को पार करने की आज्ञा दी। जगबहादुर आगे बढ़ा। जब महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम ने देखा कि वह उस भयंकर जल-धारा में न गिरकर पार निकल जावेगा तो उसने आज्ञा दी कि वह बीच से ही लौट आवे। भयंकर खतरा था। तनिक भी विचलित होने पर उसका अन्त समीप था। परन्तु जगबहादुरसिंह अत्यन्त कुशल अश्वारोही था। नेपाल में उससे अच्छा कोई अश्वारोही नहीं था। उसने घोड़े को घुमाकर उसका मुँह पीछे को मोड़ दिया और उसने आधे बीच से पीछे की ओर पुल पार कर दिया। महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रमसिंह का यह वार खाली गया।

उसके कुछ समय उपरान्त महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रमसिंह ने महाराजा से जगबहादुर को कुंए मे फिंकवाकर मार डालने की आज्ञा प्राप्त करली। उसने जगबहादुरसिंह पर कोई झूठा दोषारोपण किया। उस झूठे दोषारोपण के दण्डस्वरूप जगबहादुर को मृत्युदण्ड दिया गया। माथबरसिंह ने अपने भतीजे को बचाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यह भी सम्भव है कि वह विवश हो इस स्थिति में न हो कि उसकी सहायता कर सकता।

जगबहादुरसिंह को सम्भवतः आनेवाली विपत्ति का अनुमान था। उसने काठमांडू के सभी कुओं का अध्ययन किया। उन्हें घस कर देखा और उनमें कूदने का अभ्यास किया। यह हो सकता है कि उसने उस कुए को ही पसंद किया हो जिसे वह भलीभांति जानता था अथवा उसने अपनी मृत्यु का यह तरीका स्वीकार किया क्योंकि उससे बच निकलने की सम्भावना थी। जो भी हो उसको कुए में फेंककर मार डालने की आज्ञा दे दी गई। जब जगबहादुरसिंह कुए पर लाया गया जिसमें फेंककर वह मारा जानेवाला था तो

उसने कहा कि महाराजकुमार तथा उसके अंगरक्षक इत्यादि उसकी मृत्यु को देखने के लिए एकत्रित हैं। जगबहादुरसिंह ने महाराजकुमार से प्रार्थना की कि उसे कुएं में फेंककर अपमानित न किया जाये। वह स्वयं ही उसमें कूद पड़ेगा। महाराजकुमार से अपनी उदारता प्रदर्शित करने के लिए उसे स्वयं कूदने की आज्ञा दे दी। जगबहादुर कुएं में कूद गया। दर्शक लोग अपने-अपने स्थानों को लौट गए।

जब जगबहादुर एक बार पानी के ऊपर आया तो उसने कुंये की दीवार के निकले हुए पत्थरों को दृढ़ता से पकड़ लिया और पानी की तेजी से वह उसको पकड़ रहकर अपने को डूबने से बचाए रख सका। रात्रि पड़ने पर उसके मित्र आए और उन्होंने रस्सी लटकायी। जगबहादुर उस रस्सी के सहारे ऊपर आ गया। कुंये से निकलते ही उसने काठमांडू छोड़ दिया। वह अज्ञात वास में चला गया और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में छिपा रहा। वह उस समय प्रकट होना चाहता था जब पापा-वर्ग का प्रभाव बहुत अधिक हो और महाराजकुमार प्रभावहीन हो जायें। कुछ समय के उपरान्त अनुकूल अवसर देखकर वह अपने गुप्त स्थान से निकलकर प्रकट हो गया।

ऐसी परिस्थितियों में जबकि जगबहादुरसिंह को सब तरफ से खतरा था और चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था तो यदि वह स्वभाव से सहिष्णु और शान्त व्यक्ति होता तो भी उसका शांत और सहिष्णु बने रहना सम्भव नहीं था। परन्तु जगबहादुर जैसे असहिष्णु और स्वच्छंद प्रकृति के व्यक्ति को इन परिस्थितियों ने उसे और अधिक अशान्त और कठोर बना दिया। यदि वह चाहता तो काठमांडू को जहां षडयन्त्र हत्या तथा रुधिर स्नान आए दिन की बात थी छोड़ कर अपने पैतृक गृह को जा सकता था। यदि वह ऐसा करता और भविष्य में कभी पांडे शक्तिशाली हो जाते तो उसके सम्पूर्ण परिवार का विनाश अवश्यम्भावी था। उसको खतरा होते हुए भी उसे उस खतरनाक स्थिति में रहना था। यदि वह राजनीति को तिलांजलि देकर काठमांडू छोड़ देता तो उसकी मृत्यु और परिवार का विनाश अवश्यम्भावी था।

जगबहादुर राणा

जगबहादुर राणा ने जब नेपाल का शासन-सूत्र सम्हाला तो उसके उपरान्त नेपाल का इतिहास उसके जीवनकाल में वास्तव में उसका व्यक्तिगत इतिहास बन गया। वह सर्वशक्तिमान था परन्तु वह स्वयं अपना परामर्शदाता था। वह किसी से परामर्श करके कोई काम नहीं करता था। जगबहादुर राणा का अब तक का जीवन-वृत्तान्त उसके चरित्र को कोई बहुत उज्ज्वल रूप में प्रकट नहीं करता। उसने अपने उस चाचा को जिसने उसको आगे बढ़ाया मार डाला। लोग कह सकते हैं कि महाराजा के क्रोध के भय से और अपने जीवन की रक्षा के लिए उसने अपने चाचा को मारना स्वीकार कर लिया। परन्तु जगबहादुर ऐसा कायर नहीं था कि वह महाराजा के भय से ऐसा जघन्य कार्य करता। उसने कोट हत्याकांड द्वारा नेपाल में अपनी सत्ता को स्थापित किया था वह कांड भी उसके यश को बढ़ानेवाला नहीं था। कोट-हत्याकांड के सम्बन्ध में राणा जगबहादुर की मृत्यु पर्यन्त यह मान्यता थी कि उसका एकमात्र कारण महारानी का उच्छृंखल और वीभत्स आचरण था। परन्तु विचारवान व्यक्तियों की मान्यता थी कि उसने अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए ऐसा किया था।

1 महारानी उस समय भी नपाल की शासिका (रिजेंट) थी। हनुमानधोक महल से वह शासिका के अधिकारों का प्रयोग करती थी। काठमांडू मे जगबहादुर के कठोर और दृढ़ शासन के कारण कुछ दिनों तक शान्ति रही। जबकि उसका अभागा पति महाराजा राजेन्द्रविक्रम काशी-यात्रा के लिए प्रस्थान करने ही वाला था उसने एक बार फिर प्रहार किया। महाराजा का स्वामिभक्त सेवक भवानीसिंह जो अपने स्वामी के पास हाथी पर बैठा था महारानी की आज्ञा से मार डाला गया। काठमांडू मे आतंक और भय छा गया। राणा जगबहादुर ने सेना को सजग और सतर्क रखा क्योंकि वह नपाल की घाटी को एक दूसरे भयंकर रुधिर-स्नान से बचाना चाहता था। महारानी को अब भी विश्वास था कि राणा जगबहादुर उसके कहे अनुसार करेगा अतएव वह उस पर विश्वास करती थी। उसने राणा जगबहादुर से अनवरत मांग करना आरम्भ करदी कि महाराजकुमार सुरेन्द्र तथा उसके भाई को मारकर उसके पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाया जाये। राणा जगबहादुर से जब भी वह इस सम्बन्ध में बात करती तो वह नम्रतापूर्वक उसके विचार से अपना मतभेद प्रकट करता। बात यह थी कि राणा जगबहादुर जानता था कि महारानी अत्यन्त भयकर है। यदि उसको पराभूत नहीं किया गया तो वह उसके लिए खतरनाक हो जायेगी। अस्तु यह भी कारण था कि उसने उसकी इच्छा को पूरा नहीं किया। यदि महाराजा राजेन्द्रविक्रम सनकी और बुद्धिहीन था तो महारानी राक्षसी स्वभाव की थी। राणा जगबहादुर ने धीरे धीरे महारानी के कुकृत्यों तथा षड्यन्त्रों के प्रमाण इकट्ठे करना आरम्भ किया और उस रक्त की प्यासी महारानी की शक्ति को समाप्त करने की योजना तयार करली। एक दिन प्रातःकाल जब कि महारानी अपनी भयानक योजना पर सोच विचार कर रही थी कि उसको राणा जगबहादुर का एक पत्र मिला। उसमे लिखा था—'मुझ साम्राज्ञी का पत्र मिला जिसमें मुझे इस काय को करने का आदेश दिया गया है जिसे मैं जघन्य अपराध मानता हूँ। मैं नम्रतापूर्वक श्रीमती के इस आदेश का विरोध करता हूँ क्योंकि यह अत्यन्त अन्यायपूर्ण बात होगी कि बड़े लड़के के अधिकार को छीनकर छोटे को सिंहासन पर बैठाया जाये। न तो यह न्यायसंगत है न यह हमारी परम्परा ही है और यह सभी कानूनों के विरुद्ध है। फिर चाहे वे मानवीय कानून हों या दवी नियम हों। इसके अतिरिक्त महाराजकुमारों की हत्या, आत्मा तथा धम के विरुद्ध भयंकर पाप है। इन कारणों से मुझे खेद है कि मैं श्रीमती की आज्ञा नहीं मान सकता। शासिका के रूप मे मेरा जो आपके प्रति कतव्य है उसके अतिरिक्त मेरा अपने देश और राज्य के प्रति भी कर्तव्य है और यदि दोनों कर्तव्यों मे टक्कर होगी तो राज्य के प्रति कतव्य व्यक्तिगत सम्बन्धों से ऊपर होगा। राज्य के प्रति मेरा कतव्य मुझे आदेश देता है कि यदि साम्राज्ञी मुझ पुनः ऐसी आज्ञा देंगी तो श्रीमती को राज्य के कानून के अनुसार हत्या का प्रयत्न करने के लिए देश के कानून द्वारा दंडित किया जावेगा।

उस पत्र को पढ़कर महारानी को बहुत क्रोध आया। उसने देखा कि राणा जगबहादुर ने आरम्भ में तो नम्रता से अपना विरोध प्रकट किया था किन्तु पत्र के अंत में दृढ़ता और कठोरता का परिचय दिया। महारानी ने देखा कि जिस व्यक्ति पर उसने अभी तक विश्वास किया था जिसे कृपा उठाकर नपाल का सर्वोच्च पद प्रदान किया और जिसके कहने पर उसने कोट

मे हत्याकांड करवाया और जो उस समय उसकी रक्षा के लिए छाया की तरह उसके पास ही खड़ा रहा था वही उसे हत्या के प्रयत्न के लिए वंश के कानून द्वारा दंडित करने की धमकी दे रहा है । महारानी को तो एक ही कानून याद था अर्थात् जो उसका विरोध करे उसको मरवा देना । अस्तु उसने राणा जंग बहादुर को मरवा डालने का निश्चय कर लिया । वह भूल गई कि राणा जंग बहादुर अत्यन्त धूर्त चतुर, स्थिति की नाप तौल करनेवाला और कूटनीतिज्ञ था । उसको मरवाना सरल नहीं था । उसने अपनी योजना को बड़े गुप्त रूप से तयार किया था । उसका विश्वास था कि उसकी गुप्त योजना का किसी को पता नहीं चलेगा । उसने एक व्यक्ति बिरधोज बसनत को राणा जंगबहादुर को मारने के लिए तयार किया । उसने उसको पवित्रतम शपथ दिलाकर कि वह इस षड्यंत्र को गुप्त रखेगा राणा जंगबहादुर की हत्या करने को नियुक्त किया। उसका पुरस्कार भी अनोखा था । महारानी ने उसको वंश-परम्परागत प्रधान मंत्री का पद देने का वचन दिया था । कहने का तात्पर्य यह कि प्रधानमंत्रित्व उसी के वंश में रहेगा। प्रधानमंत्री पद पर बने रहने के लिए यदि आवश्यकता हो तो उसको तथा उसके वंशजों में से प्रत्येक को सात खून माफ थे अर्थात प्रत्येक वंशज को सात व्यक्तियों की हत्या करने की छूट थी । उसको कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता था । अवश्य ही राजवंश के किसी सदस्य की वह हत्या नहीं कर सकता था । उस रक्त पिपासु महारानी तथा उस शक्ति और सत्ता के लालची बिरधोज बसनत में यह अपूर्व सौदा हुआ ।

महारानी की योजना यह थी कि बिरधोज बसनत जगबहादुर और उसके ६ भाइयों को दोनों महाराजकुमारों के महलों मे रहने के लिए राजी करे और इस प्रकार वे दोनों राजकुमारों के महलों म ही सोवें । एक रात्रि को बसनत का दल उस महल म घुसकर उन दोनों महाराजकुमारों को और यदि उसका पति भी वहां मिल जाय तो महाराजा को मार डाले । जगबहादुर राणा और उसके भाइयों पर यह दोषारोपण किया जाये कि उसने दोनों महाराज कुमारों और महाराजा को मारा है अतएव उनको प्राणदण्ड दे दिया जाय । इस प्रकार एकसाथ ही सब शत्रुओं का सफाया कर दिया जाय । उनको यह योजना छोड़नी पड़ी । राणा भाई कोई मूर्ख और बुद्धिहीन नहीं थे जो इस षड्यन्त्र के शिकार हो जाते। दूसरी योजना तयार की गई । उस योजना के अनुसार बसनत किसी प्रकार राणा जंगबहादुर को हनुमानधोक महल के एक एकांत कक्ष में बुला ले जहां महारानी भी उपस्थित रहे और जगबहादुर को मारनेवाले उपयुक्त स्थान पर छिपे रहें ।

महलों म राजघराने के बच्चों के लिए एक शिक्षक था उसका नाम विजयराज था । वह विद्वान परन्तु भीरु पुरुष था । बिरधोज बसनत ने उसे सफलता प्राप्त होने पर राजपुरोहित बनाने का वचन देकर जंगबहादुर को हनुमानधोक महल मे निश्चित कक्ष तक किसी प्रकार लाने के लिए तैयार कर लिया। विजयराज राणा जगबहादुर को बुला लाने के लिए गया और बिसनेत तथा उसके साथी उपयुक्त स्थान पर छिपकर जगबहादुर के आने की प्रतीक्षा करने लगे । बहुत समय व्यतीत हो गया किन्तु न तो राणा जगबहादुर ही आया और न विजयराज ही लौटा ।

विजयराज कुछ घबराया हुआ-सा महाप्रभावशाली प्रधानमंत्री के महल लगमटोल में घुसा । उसको राणा जगबहादुर ने तुरंत बुला लिया ।

विजयराज ने महारानी का सदेश कह सुनाया। जगबहादुर ने उसे ऊपर-नीचे अत्यन्त रूखे ढंग से गम्भीर होकर देखा और घुड़ककर कहा कि तुम्हारा इस प्रार्थना से वास्तविक उद्देश्य क्या है ? विजयराज भीरु षड्यन्त्रकारी था। वह घबड़ा गया उसने इस घुड़की का यह अर्थ लगाया कि प्रधानमंत्री को षड्यन्त्र का पता लग गया है। भय के कारण उसने समस्त षड्यन्त्र का भंडाफोड़ कर दिया। तुरंत ही जगबहादुर ने अपनी सेना की ६ कम्पनियों को साथ ले हनुमानढोका महल को प्रस्थान कर दिया।

विरयोज ने भी मूर्खों की भांति व्यवहार किया। वह यह न समझ सकने के कारण कि राणा जगबहादुर अभी तक क्यों नहीं आया और न उसका पठित सदेशवाहक ही लौटा घोड़े पर चढ़कर तेजी से सड़क पर प्रधानमंत्री के भवन लगलटोल की ओर चल दिया। वह सीधा जगबहादुर की सेना के सामने पहुँच गया। फिर भी वह सीधा आगे बढ़ा चला गया। पीछे मुड़कर अपने साथी षड्यन्त्रकारियों को भाग जाने की चेतावनी भी उसने नहीं दी। कृष्णबहादुर ने उसे देखा और उसे पकड़ लिया। उसके अस्त्र-शस्त्र छीन लिए और उसे अपने भाई राणा जगबहादुर के सामने ले गया। बिसनत ने महामहिम प्रधानमंत्री को अभिवादन किया और उससे कहा कि महारानी उनसे तुरंत ही महल में मिलना चाहती हैं। प्रधानमंत्री ने उत्तर दिया यह क्योंकर होगा प्रधानमन्त्री तुम हो न कि मैं! महारानी ने तुम्हें प्रधानमंत्री बनाया है न कि मुझ। उन्हें मुझसे मिलने की अभिलाषा क्यों है ? प्रधानमन्त्री ने इतना कहकर संकेत किया वह बिसनत की मृत्यु का संकेत था। विरयोज मार दिया गया और जगबहादुर सेनासहित आगे बढ़ा। महल में पहुँचकर जगबहादुर की सेना ने बिसनत के सहयोगियों को घेर लिया। जिन्होंने विरोध किया उन्हें मार दिया गया। जिन्होंने अपने हथियार दे दिये उन्हें पकड़कर जंजीरों से बांध दिया गया।

जगबहादुर बिना दायें बायें देखे सीधे महाराजा के रहने के कमरों में तेजी से चला गया। महारानी ने भयभीत होकर देखा कि जिस व्यक्ति को वह मरे हुए के बराबर समझती थी वह महलों तक घोड़े पर चढ़कर आया है और महाराजा से मिलना चाहता है यही नहीं वह महाराजा से अकेले में तुरन्त ही मिलने की इच्छा प्रकट करता है। उसने कुछ अपने सदेशवाहक भेजे। जगबहादुर ने उनकी ओर भृकुटी चढ़ाकर सीधे देखा सो वे लोग भयभीत हो उठे। वह महल में टहलने लगा और इस बात की मांग की कि उसे तुरन्त महाराजा के पास ले जाया जाय। महारानी जान गई कि षड्यन्त्र असफल हो गया। परन्तु फिर भी उसने पराजय स्वीकार नहीं की। वह महाराजा के पास चली गई और उसकी बगल में बैठ गई जिससे कि जगबहादुर महाराजा से अकेले में न मिल सके। महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम उनके समीप ही खड़ा था।

महारानी ने हस्तक्षेप करना चाहा किन्तु उसने मूक घृणा के साथ उसकी उपेक्षा की और अपनी पगड़ी सिंहासन के पाये के पास रखकर स्पष्ट शब्दों में बिना किसी उलझन के गम्भीरतापूर्वक महारानी को तुरन्त देशनिकाले और नेपाल से बाहर भेज दिए जाने की आज्ञा देने की मांग की। उसने अपने सैनिकों की ओर देखा। महारानी को वहाँ से ले जाया गया और उसके निज के कमरों में बन्द कर दिया गया। प्रधानमंत्री महलों से वापस चला गया।

वापस आकर उसने राज्य परिषद (कौंसिल) को बुलाया और खूनी महारानी के बारे में निर्णय किया। महाराजा और महाराजकुमार ने महारानी के अपराधों की सूची पर और उसके विरुद्ध राज्य परिषद ने जो निर्णय किया था अपनी मुहर लगायी। औपचारिक रूप से उसको शासिका (रिजेंट) के पद से हटा दिया गया। उसके विरुद्ध इन शब्दों में निर्णय दिया गया। 'तुमने सैकड़ों व्यक्तियों को मरवा दिया और अपनी प्रजा को त्रास यन्त्रणा दी प्रजा को घोर कष्ट दिए और उनका घोर अहित किया उनके कष्टों का तब तक अन्त नहीं होगा जब तक कि तुम देश में रहोगी ऊपर लिखे अपराधों के दण्ड स्वरूप तुम्हें आज्ञा दी जाती है कि तुम देश से बाहर निकल जाओ और तुरत वाराणसी जाने की तयारी करो।

महारानी के सारे षड्यन्त्र असफल हो चुके थे। उसको देश से बाहर निकल जाने की आज्ञा मिल चुकी थी। उसने इस बात पर बल दिया कि वह अपने दोनों पुत्रों रानेन्द्र और वीरेन्द्र को नपाल में न छोड़कर अपने साथ ले जावेगी। वह उन्हें काठमांडू में नहीं छोड़ जायेगी जहां उनके जीवन का खतरा है। जंग बहादुर की इच्छा थी कि उनको मां के साथ न जाने दिया जाय जिससे कि महारानी बाहर से षड्यन्त्र न कर सके। किन्तु महारानी अपने पुत्रों को साथ ले जाने पर तुल गई। अन्त में जंगबहादुर को अनिच्छापूर्वक राजकुमारों का उसके साथ जाना स्वीकार करना पड़ा। उसने नियल महाराजा को भी यह घोषणा करने के लिए विवश कर दिया कि वह भी पवित्र गंगा के तट पर वाराणसी में रह कर अपने पापों को धोना चाहता है। अस्तु वह भी महारानी के साथ वाराणसी जायेगा। महारानी जानती थी कि महाराजा को अपनी मुट्ठी में रखकर फिर भी वह नपाल की राजनीति में थोड़ा बहुत दखल दे सकती है। जंगबहादुर ने महारानी के उस दल के साथ अपनी सेना की छ टुकड़ियों को सीमा तक पहुँचाने को भेजा जिससे कि कदाचित् महारानी वापस न लौट आये। महाराजा का परिवार २१ नवम्बर १८४६ को देश छोड़कर भारत की ओर चल दिया। राज्य परिषद् ने महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रम को महाराजा की अनुपस्थिति में शासक (रिजेंट) नियुक्त कर दिया। बनारस में नपाल से निर्वासित दलबहादुर को महारानी ने अपना नया प्रेमी स्वीकार कर लिया। अपने नये प्रेमी के साथ मिलकर वह नेपाल के वर्तमान शासन के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने की कल्पना करने लगी।

जिस दिन महाराजा और महारानी नपाल छोड़कर वाराणसी गए (२३ नवम्बर १८४६) और जिस दिन नवम्बर १९५० में राणाशाही का अन्त हुआ उस लम्बे सौ वर्ष से अधिक समय में नपाल पर राणाओं का एकछत्र शासन रहा। महाराजा अपने प्रधानमन्त्री के हाथ की कठपुतली था। यही नहीं महाराजा की स्थिति तो कैदी की सी थी। वह केवल अपने महल में भोग विलास भर कर सकता था। शक्ति के नाम पर वह बेचारा शून्य और नगण्य था।

महाराजा और महारानी के नपाल छोड़कर चल जाने के उपरान्त समस्त सत्ता राणा जंगबहादुर में केन्द्रित हो गई। राणा जंगबहादुर प्रधानमन्त्री था और उसके भाई भतीजे तथा अन्य सम्बन्धियों के अधिकार में नपाल के सभी महत्वपूर्ण पद थे। सेना उसके भाई के अधिकार में थी। सुरेन्द्रविक्रम जो शीघ्र ही महाराजा बननेवाला था नाममात्र के शासक से भी कम प्रभावशाली था।